श्रीराम

श्रीरघुनाथ-कथामृत-पोसित

काव्यकला रति-सी छवि छाई ।

ताहि अनेकन भूषन भूषि

बरी तुलसी अति ही हरसाई ॥

जोवत सो जुग जोरी खरी

हुलसी हुलसी अति मोद उछाई ।

सो हुलसीके हियेको हुलास

हरै हमरे जियकी जड़ताई ॥

श्रीराम

रघुनाथ-कथामृत-पोसित

काव्यकला रति-सी छबि छाई ।

ाहि अनेकन भूषन भूषि

वरी तुलसी अति ही हरसाई ॥

जोवत सो जुग जोरी खरी

हुलसी हुलसी अति मोद उछाई ।

सो हुलसीके हियेको हुलास

हरै हमरे जियकी जडताई ॥

श्रीहरिः

# दो शब्द

कविचक्रचूडामणि गोसाईं श्रीतुलसीदासजीके ग्रन्थोंमें कलेवरकी दृष्टिसे रामचरितमानसके पश्चात् दूसरा नंबर गीतावली-का ही है। इसमें सम्पूर्ण रामचरित पदोंमें वर्णन किया गया है। परन्तु रामायणकी अपेक्षा इसकी वर्णनशैली कुछ दूसरे ही ढंगकी है। रामायण महाकाव्य है, उसमें सभी रसोंका साङ्गोपाङ्ग दिग्दर्शन कराया गया है; वहाँ कविहृदयके सभी भावोंका गम्भीर विश्लेषण देखनेमें आता है। परन्तु गीतावलीमें आरम्भसे लेकर अन्तपर्यन्त कविका एक ही भाव दिखायी देता है; वह कथानकके क्रमकी अपेक्षा न करके अपने इष्टदेवकी मधुर झाँकी करनेमें ही संलग्न है। गीतावलीमें उसका ललित भाव ही व्यक्त हुआ है। जहाँ-जहाँ भगवान्‌के रूपमाधुर्य अथवा करुणरसके आस्वादनका अवसर मिला है वहाँ-वहाँ तो वे मध्याह्नकालीन सूर्यकी तरह मन्दगतिसे चलते हैं; इसके विपरीत जहाँ अन्य विषय है उसकी ओर दृष्टिपाततक नहीं करते। यहाँतक कि अन्य युद्धोंकी तो बात ही क्या, रावणवधका भी उन्होंने जिक्र नहीं किया परशुरामजी-के विषयमें 'भज्यौ भृगुपति-गरब सहित तिहुँ लोक बिमोह कियो॥' (बाल० ९०) केवल इतना ही कहा है, किष्किन्धाकाण्ड केवल दो पदोंमें ही समाप्त हो जाता है, लंकादहनका भी हनुमानजीने सीताजीसे विदा होते समय केवल जिक्र ही किया है तथा लंकाकाण्ड, जो अन्य रामायणोंमें बहुत विस्तृत मिलता है यहाँ अरण्य और किष्किन्धाको छोड़कर और सबसे छोटा है

इसके विपरीत भगवान्‌की बाललीला भरतमिलाप, जटायु उद्धार, विभीषणशरणागति सीताजीकी वियोगव्यथा राम-

श्रीहरिः

# दो शब्द

कविचक्रचूडामणि गोसाईं श्रीतुलसीदासजीके ग्रन्थोंमें कलेवरकी दृष्टिसे रामचरितमानसके पश्चात् दूसरा नंबर गीतावली-का ही है। इसमें सम्पूर्ण रामचरित पदोंमें वर्णन किया गया है। परन्तु रामायणकी अपेक्षा इसकी वर्णनशैली कुछ दूसरे ही ढंगकी है। रामायण महाकाव्य है, उसमें सभी रसोंका साङ्गोपाङ्ग दिग्दर्शन कराया गया है; वहाँ कविहृदयके सभी भावोंका गम्भीर विश्लेषण देखनेमें आता है। परन्तु गीतावलीमें आरम्भसे लेकर अन्तपर्यन्त कविका एक ही भाव दिखायी देता है; वह कथानकके क्रमकी अपेक्षा न करके अपने इष्टदेवकी मधुर झाँकी करनेमें ही संलग्न है। गीतावलीमें उसका ललित भाव ही व्यक्त हुआ है। जहाँ-जहाँ भगवान्‌के रूपमाधुर्य अथवा करुणरसके आस्वादनका अवसर मिला है वहाँ-वहाँ तो वे मध्याह्नकालीन सूर्यकी तरह मन्दगतिसे चलते हैं; इसके विपरीत जहाँ अन्य विषय है उसकी ओर दृष्टिपाततक नहीं करते। यहाँतक कि अन्य युद्धोंकी तो बात ही क्या, रावणवधका भी उन्होंने जिक्र नहीं किया; परशुरामजी-के विषयमें 'भंज्यौ भृगुपति-गरब सहित, तिहुँ लोक बिनोह कियो॥' (बाल० ९०) केवल इतना ही कहा है, किष्किन्धाकाण्ड केवल दो पदोंमें ही समाप्त हो जाता है, लंकादहनका भी हनूमान्‌जीने सीताजीसे विदा होते समय केवल जिक्र ही किया है, तथा लंकाकाण्ड, जो अन्य रामायणोंमें बहुत विस्तृत मिलता है, यहाँ अरण्य और किष्किन्धाको छोड़कर और सबसे छोटा है।

इसके विपरीत भगवान्‌की बाललीला, मरतमिलाप, जटायु-उद्धार, विभीषणशरणागति, सीताजीकी विषादचर्या, रण-

पद हैं। यही क्रम नागरीप्रचारिणी सभाद्वारा प्रकाशित तुलसी-ग्रन्थावलीकी प्रतिमें तथा श्रीरामनारायण बुकसेलरद्वारा प्रकाशित श्रीवामदेवजीकी टीकामें भी है। परन्तु नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊकी श्रीबैजनाथजीकी टीकावाली और खड्गविलास-प्रेसकी महात्मा हरिहरप्रसादकृत टीकावाली प्रतियोंके बालकाण्ड-की पदसंख्या इससे भिन्न है। पद तो सभी प्रतियोंमें एक-से ही हैं, अन्तर केवल उनकी गणनामें है। प्रस्तुत पुस्तकके बालकाण्ड-में जो १२ से लेकर १५ वें तक चार पद हैं उन्हें पहली तीन प्रतियोंमें एक माना है तथा ३७ वें पदको दो माना है। हमें उनका मत ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि पुस्तकके सभी पदोंमें यह क्रम रहा है कि प्रत्येक पदके अन्तिम चरणमें गोसाईंजीका नाम रहता है। इस न्यायसे खड्गविलास और नवलकिशोर-प्रेसोंकी प्रतियोंका ही पद-विभाग उचित जान पड़ता है और हमने भी उसे ही स्वीकृत किया है। इसलिये इस संस्करणके बालकाण्डकी पदसंख्या ११० है और समस्त पद ३३० हैं।

प्रस्तुत पुस्तकके पाठ-संशोधन और अनुवादमें उपर्युक्त सब प्रतियोंसे सहायता ली गयी है। तथा इनके सिवाय पूज्यपाद श्रीजयरामदासजी दीन ( रामायणी ) और श्रद्धेय गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी एम्० ए० शास्त्रीने भी इस अनुवादकी आद्योपान्त आवृत्ति करके मूल पाठ और अनुवादमें जहाँ-तहाँ संशोधन करनेकी कृपा की है। इसके लिये मैं उपर्युक्त सभी महानुभावोंका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। आशा है, इन सबकी इस प्रसादीके द्वारा पाठकोंका कुछ मनोरञ्जन हो सकेगा।

विनीत—

मुनिलाल

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| ३५–रावणकी मन्त्रणा ... | ३११ |
| ३६–विभीषण-परित्याग ... | ३२३ |
| ३७–जानकी-विजय-संवाद | ३४६ |
| **लंकाकाण्ड** | |
| ३८–मन्दोदरी-प्रवेश ... | ३५२ |
| ३९–अंगदका दूतकर्म ... | ३५४ |
| ४०–लक्ष्मण-मूर्छा ... | ३५८ |
| ४१–विह्वल राम ... | ३७० |
| ४२–अयोध्यामें सन्देश ... | ३७१ |
| ४३–अयोध्यामें आनन्द ... | ३७५ |
| ४४–रावणाभिषेक ... | ३७७ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **उत्तरकाण्ड** | |
| ४५–रामराज्य ... | ३८१ |
| ४६–रामलक्ष्मण ... | ३८२ |
| ४७–रामकी लीला ... | ४१३ |
| ४८–अयोध्याकी रमणीयता | ४१५ |
| ४९–दीपमालिका ... | ४२० |
| ५०–वसन्त-विहार ... | ४२१ |
| ५१–अयोध्याका आनन्द ... | ४२७ |
| ५२–रामराज्य ... | ४२८ |
| ५३–सीता-वनवास ... | ४२९ |
| ५४–लवकुश-जन्म ... | ४३८ |
| ५५–रामदरबारका उत्सव ... | ४४२ |

| पद-सूचना | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|
| कहौ तुम्ह बिनु गृह | ... १८० |
| कहौ सो बिबिन है | ... १८४ |
| करत गाउ मनमों अनुमान | ... २४० |
| कहै मुख, सुनहि सिखावन, गारो | २४७ |
| करकर-धनु, कटि कसिर निषंग | २७० |
| कहु, कबि ! कब रघुनाथ | ... २०२ |
| कबहुँ, कबि ! राघव आवहिंगे ! | ६०३ |
| कबिके बचन सियसों | ... ३०९ |
| कबिके सुनि बल कोमल बैन | ... ३१६ |
| करनाकरकी करना भई | ... ३३५ |
| कहौ, क्यों न बिभीषनकी बनै ! | ३३९ |
| कब देखौंगी नयन | ... ३४६ |
| कहु, कबहूँ देखिहौं | ... ३४७ |
| कारेको गोरो, कै कबिहि लाग्यो ! | ३४३ |
| कारेको मानस हानि दियें हौं ! | ३५५ |
| कानुको काहू कलाकार ऐसो पाए | ३६५ |
| कुँवर खेलनको, री मजनी ! | ... १८८ |
| कैसे बिधु-मुख | ... १९७ |
| कैसेकी करौं को चतुरई कौन ! | ८६१ |
| कैसेकी जौलौं जियौं री | ... ४४१ |
| कोसलपतिके कुमोदबंधु | ... १०७ |
| कोसलपुरी सुहावनी | ... ४१५ |
| कौसिकके सबके मनको | ... १०४ |
| कौसिक सुबल पूरो | ... १११ |
| कृपानिधान सुजान प्रानपति | ... १७९ |
| खेलन चलिये आनँदकंद | ... ८३ |
| खेलि खेल सुखेलनिहारे | ... ८९ |
| खेलत बसंत राजाधिराज | ... ४२५ |
| गये राम लषन सबकी भलो | ... २४० |
| गावैं बिबुध बिमल बर बानी | ... २७ |
| गौने मौनही बारहि बार | ... ४३५ |
| घर-घर अवध बधावने | ... ३० |
| चढ़त महामुनि जाग जयो | ... ९१ |
| चले लेन लषन-हनुमान हैं | ... ३३३ |
| चरचा चरनिसों चरची | ... ४३१ |
| चाल्यो भले बेटा | ... ११३ |
| चिबुक अति चिचित | ... २१७ |
| चुरिहारि उघटि अनखाइकै | ... ४२ |
| छैगन-मैगन अँगना खेलत | ... ६९ |
| छबकी ! बलि, बेलि मुदानी | २७४ |
| छोटी छोटी गोदिनों अँगुरियों | ... ७४ |
| छोटिये धनुहियों, पनहियों | ... ८७ |
| जनक बिदेह हार बार सुधरको | ११७ |
| जबतें लषन लषन चितए री | ... १२८ |
| जबहीं सब सुरपति निसान | ... १४७ |
| जय दोउ दसरथ-सुंदर दिनेस | १४९ |
| जलज कुरित मन हरत | ... १६३ |
| जसुमति जननी जगदंबा | ... १७७ |

| पद-सूचना | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|
| [illegible] | १७४ |
| [illegible] | १८६ |
| [illegible] | ६७ |
| [illegible] | १२८ |
| [illegible] | ४१ |
| [illegible] | १०३ |
| [illegible] | १९५ |
| [illegible] | १९९ |
| [illegible] | ३२८ |
| [illegible] | ५९ |
| [illegible] | ४२८ |
| [illegible] | २१० |
| [illegible] | ४३६ |
| [illegible] | १२१ |
| [illegible] | ५१ |
| [illegible] | २५७ |
| [illegible] | २९० |
| [illegible] | ७८ |
| [illegible] | ४०० |
| [illegible] | १८० |
| [illegible] | २१९ |
| [illegible] | १८५ |
| [illegible] | २७४ |
| [illegible] | १९६ |
| [illegible] | २१२ |
| [illegible] | २५३ |
| [illegible] | ३८१ |
| [illegible] | ३४ |
| [illegible] | ४४१ |
| [illegible] | ८४ |
| [illegible] | २४९ |
| [illegible] | २५५ |
| [illegible] | ३३० |
| [illegible] | ३६८ |
| [illegible] | १०९ |
| [illegible] | २६९ |
| [illegible] | ३७३ |
| [illegible] | ८२ |
| [illegible] | २०६ |
| [illegible] | २९४ |
| [illegible] | २५० |
| [illegible] | ३६५ |
| [illegible] | २४५ |
| [illegible] | ३२५ |
| [illegible] | १७२ |
| [illegible] | ६८ |
| [illegible] | १०४ |
| [illegible] | १३७ |
| [illegible] | १५८ |
| [illegible] | २८९ |

स्वाभाविक शृङ्गार किये तरह-तरहकी मङ्गलसामग्री लिये चली आ रही हैं। वे गाती हैं और प्रसन्नचित्तसे आशीर्वाद देती हैं कि यह सुखदायक बालक चिरजीवी हो ॥७॥ गलियोंमें केसरकी कीच मच रही है तथा अरगजा, अगर और अबीर उड़ रहा है। पुरके नर-नारी प्रेममें भरकर नाच रहे हैं और उन्होंने अपने शरीरकी सुध भी भुला दी है ॥८॥ महाराज दशरथ अगणित वस्त्र, हाथी, घोड़े, गौ, मणि और सुवर्ण आदि अधिक परिमाणमें दे रहे हैं। जिसके लिये जो चीज उचित है उसे वही दान कर रहे हैं। इस समय सारी सिद्धियाँ उनके घर आ गयी हैं ॥९॥ इस समय [illegible] साधुजन और ब्राह्मण तो प्रसन्न हो रहे हैं किन्तु [illegible] जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर सभी पुष्प [illegible] कुमुदवन सरझा जाता है ॥१०॥ जिस [illegible] और ब्रह्माजीका जगत्में [illegible] अवधपुरीमें दसों दिशाओंमें [illegible] प्रकार गाकर करूँ [illegible] करनेवाले हैं [illegible] [illegible] [illegible]

सहेली सुनु सोहिलो रे।
सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो [illegible] सब जग आज
पूत सपूत कौसिला जायो, अचल भयो कुलराज [illegible]।

नृत्य करहिं नट-नटी, नारि-नर अपने अपने रंग ।
मनहुँ मदन-रति बिबिध बेष धरि नटत सुदेस सुढंग ॥ १४ ॥
उघटहिं छंद-प्रबंध, गीत-पद, राग-तान-बंधान ।
सुनि किंनर गंधरब सराहत, बिथके हैं बिबुध-बिमान ॥ १५ ॥
कुंकुम-अगर-अरगजा छिरकहिं, भरहिं गुलाल-अबीर ।
नभ प्रसून झरि, पुरी कोलाहल, भइ मनभावति भीर ॥ १६ ॥
बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो सुर-गुर-आसिरबाद ।
दसरथ-सुकृत-सुधासागर सब उमगे हैं तजि मरजाद ॥ १७ ॥
ब्राह्मन बेद, बंदि बिरदावलि, जय-धुनि, मंगल-गान ।
निकसत पैठत लोग परस्पर बोलत लगि लगि कान ॥ १८ ॥
वारहिं मुकुता-रतन राजमहिषी पुर-सुमुखि समान ।
बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि-जव-धान ॥ १९ ॥
कीन्हि बेदबिधि लोकरीति नृप मंदिर परम हुलास ।
कौसल्या, कैकयी, सुमित्रा रहस-बिबस रनिवास ॥ २० ॥
रानिन दिए बसन-मनि-भूषन, राजा सहन-भँडार ।
मागध-सूत-भाट-नट-जाचक जहँ तहँ करहिं कबार ॥ २१ ॥
बिप्रबधू सनमानि सुआसिनि, जन-पुरजन पहिराइ ।
सनमाने अवनीस, असीसत ईस-रमेस मनाइ ॥ २२ ॥
अष्टसिद्धि नवनिद्धि, भूति सब भूपति भवन कमाहिं ।
समउ-समाज राज दसरथ को लोकप सकल सिहाहिं ॥ २३ ॥
को कहि सकै अवधबासिन को प्रेम-प्रमोद-उछाह ।
सारद-सेस-गनेस-गिरीसहि अगम निगम-अवगाह ॥ २४ ॥
सिव-बिरंचि-मुनि-सिद्ध प्रसंसत, बड़े भूप के भाग ।
तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत उमगि-उमगि अनुराग ॥ २५ ॥

फलोंमें सर्वश्रेष्ठ मोक्ष कहा गया है। यदि किसीको पहले ही मोक्ष मिल जाय तो अर्थादि तीनों फलोंकी पीछेसे प्राप्ति उसके लिये अनावश्यक होगी। यहाँ मोक्षस्वरूप श्रीरामजीका जन्म प्रथम ही हो चुका है। यदि अर्थ, धर्म पहले संग रहें, काम, मोक्ष पीछे प्राप्त हों तो क्रम ठीक होगा। जैसे शत्रुघ्न, भरत राजाके साथ अयोध्यासे मिथिला बारातमें गये और लक्ष्मण, श्रीरामजी वहाँ मिले तब वहाँ चारों फलकी उपमा देना बन गया है 'नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी॥' तथा 'जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥' इत्यादि ]॥ ८॥ झुंड-की-झुंड स्त्रियाँ विचित्र थालोंमें आरती सजाकर अपने-अपने कुलके अनुसार बधावा लेकर गाती हुई चलीं॥ ९॥ [ और बालकको ऐसा आशीर्वाद देने लगीं कि ] इन बालकोंकी उन्नतिको सहन न करनेवाले तथा इनसे वैर माननेवाले लोग मन-ही-मन मर जायँ और इनके वैरियोंके विषाद-की वृद्धि हो तथा श्रीशङ्कर और पार्वतीजीकी कृपासे ये चारों ही सुन्दर राजकुमार दीर्घजीवी हों॥ १०॥ प्रजाजन प्रसन्न हो नीति-भाँतिके उपहारोंके भार लेकर चले और राजभवनके द्वारपर आकर महाराजकी दुहाई देते हुए नाचने और गाने लगे॥ ११॥ हाथी, रथ और घुड़सवार सेनाने अपने-अपने वाहन और साजोंको सजाया, मानो इस समय रतिराज ( कामदेव ) और ऋतुराज ( वसन्त ) अपने समाजसहित कोसलपुरमें विहार कर रहे हैं॥ १२॥ घण्टा, घण्टी और पखावजों तथा तालोंका शब्द हो रहा है, झाझ, बाँसुरी, डफ और करताल बज रहा है तथा नूपुर और मँजीरोंकी मनोहर ध्वनि और हाथोंके वाद्यंत्रोंको सुनकर हो रही है॥ १३॥ नट-नटी, नर-नारी

तहाँ लेन-देन कर रहे हैं ॥२१॥ महाराजने [illegible]
( पितृगृहमें रहनेवाली विवाहिता लड़कियाँ [illegible]
आश्रित और पुरवासियोंको वस्त्रादि पहनाकर [illegible]
अतः वे सब लोग महादेव और विष्णुभगवान् [illegible]
आशीर्वाद दे रहे हैं ॥ २२ ॥ इस समय जहाँ [illegible]
और सब प्रकारकी विभूतियाँ महाराजके [illegible]
महाराज दशरथके इस समय और समाजका [illegible]
मिला रहे हैं ॥ २३ ॥ अयोध्याभरके [illegible]
उत्साहका वर्णन कौन कर सकता है [illegible]
भगवान् शङ्करकी भी पहुँच वहाँ है [illegible]
पा सकते ॥ २४ ॥ महाराज दशरथके [illegible]
और सिद्धगण भी प्रसन्न [illegible]
उमँग-उमँगकर प्रभुकी [illegible]

[illegible]

आजु महामंगल कोसलपुर [illegible]
सदन सदन सोहिलो सोहाव [illegible]
सजि-सजि जान अमर-किंन [illegible]
नाचहिं नभ अपसरा मुदित [illegible]
अति सुख बाग बोलि [illegible]
जातकरम करि कनक [illegible]
दल-फल-फूल, दूब-दधि [illegible]
गावत चली भीर [illegible]

राग जैतश्री

[ ४ ]

गावैं बिबुध बिमल बर बानी।
भुवन-कोटि-कल्यान-कंद जो, जायो पूत कौसिला रानी ॥ १ ॥
मास, पाख, तिथि, बार, नखत, ग्रह, जोग, लगन सुभ ठानी।
जल-थल-गगन प्रसन्न साधु-मन, दस दिसि हिय हुलसानी ॥ २ ॥
बरषत सुमन, बधाव नगर-नभ, हरष न जात बखानी।
ज्यों हुलास निवास नरेसहि, त्यों जनपद-रजधानी ॥ ३ ॥
अमर, नाग, मुनि, मनुज सपरिजन बिगतबिषाद-गलानी।
मिलेहि माँझ रावन रजनीचर लंक संक अकुलानी ॥ ४ ॥
देव-पितर, गुरु-बिप्र पूजि नृप दिये दान रुचि जानी।
मुनि-बनिता, पुरनारि, सुआसिनि सहस भाँति सनमानी ॥ ५ ॥
पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक-जन भए दानी।
'यों प्रसन्न कैकयी सुमित्रहि होउ महेस-भवानी' ॥ ६ ॥
दिन दूसरे भूप-भामिनि दोउ भईं सुमंगल-खानी।
भयो सोहिलो सोहिले मो जनु सृष्टि सोहिले-सानी ॥ ७ ॥
गावत-नाचत, मो मन भावत, सुख सों अवध अधिकानी।
देत-लेत, पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद-अघानी ॥ ८ ॥
गान-निसान-कुलाहल-कौतुक देखत दुनी सिहानी।
हरि-बिरंचि-हर-पुर-सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी ॥ ९ ॥
आनँद-अवनि, राजरानी सब माँगहु कोखि जुड़ानी।
आसिष दै दै सराहहिं सादर उमा-रमा ब्रह्मानी ॥ १० ॥
बिभव-बिलास-बाढ़ि दसरथकी देखि न जिनहिं सोहानी।
कीरति, कुसल, भूति, जय, ऋधि-सिधि तिन्हपर सबै कोहानी ११

मङ्गलकी ध्वनि हो गयी। इस प्रकार सोहिलेमें सोहिला हो रहा है, मानो सारी सृष्टि ही सोहिलेमें सनी हुई है ॥७॥ सब लोग नाच-गा रहे हैं, यह मेरे मनको भाता है, सुखसे अयोध्याकी शोभा और बढ़ गयी है। सम्पूर्ण प्रजा आनन्दमें अघाकर लोगोंको (उपहार) देती और स्वयं लेती है, लोग स्वयं वस्त्राभूषण पहनते हैं और दूसरोंको पहनाते हैं ॥ ८ ॥ गान तथा बाजोंके शोरका कुतूहल देखकर सारी दुनिया सिहा रही है। विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजीकी पुरियोंकी भी सारी शोभा कोसलपुरीपर लुब्ध हो रही है ॥ ९ ॥ सब राजमहिलाएँ अति आनन्दित हैं, क्योंकि (पति-सुखसे) उनकी माँग और पुत्रजन्मसे कोख धन्य हो गयी है। पार्वतीजी, लक्ष्मीजी और ब्रह्माणी भी आशीर्वाद देती हुई आदरपूर्वक उनके भाग्यकी प्रशंसा कर रही हैं ॥१०॥ महाराज दशरथके वैभव और विलासकी वृद्धि देखकर जिन्हें अच्छी नहीं लगी उनपर कीर्ति, कुशल, वैभव और ऋद्धि-सिद्धि सभी कुपित हो गयी ॥११॥ विधिवेत्ता वशिष्ठजीने लोक और वेदका विधिसे सब विधान करते हुए छठी-बरही की और उन ज्ञानी गुरुदेवने उन बालकोंके राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत—ये अति सुन्दर नाम रक्खे ॥१२॥ इस समय विधाताने मोदकारी तिलोंको सुकृत पुण्य रूप पुष्पोंकी गन्धमें बसाकर उन्हें यज्ञरूप यन्त्रमें पेरकर उनसे निकला हुआ सुखरूप स्नेह तो दशरथजीको दिया है तथा सांसारिक सुखरूप खली और मैल दिक्पालोंको दिये हैं ॥१३॥ प्रतिदिन सम्पूर्ण जगत्में भगवान्के आविर्भावका उत्साह और उमंग बढ़ रहे हैं तथा पर-घरमें अवधकी

वैदिक बिधान अनेक लौकिक आचरत सुनि जानिकै।
बलिदान-पूजा मूलिकामनि साधि राखी आनिकै॥
जे देव-देवी सेइयत हित लागि चित सनमानिकै।
ते जंत्र-मंत्र सिखाइ राखत सबनिसों पहिचानिकै॥ ४॥
सकल सुआसिनि, गुरजन, पुरजन, पाहुन लोग।
बिबुध-बिलासिनि, सुर-मुनि, जाचक, जो जेहि जोग॥
जेहि जोग जे तेहि भाँति ते पहिराइ परिपूरन किये।
जय कहत, देत असीस, तुलसीदास ज्यों हुलसत हिये॥
ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिंगे, नेवते दिये।
ते धन्य पुन्य-पयोधि जे तेहि समै सुख-जीवन जिये॥ ५॥
भूपति-भाग बली सुर-पर नाग सराहि सिहाहिं।
तिय-बरबेष अली रमा सिधि अनिमादि कमाहिं।
अनिमादि, सारद, सैलनंदिनि बाल लालहि पालहीं।
भरि जनम जे पाए न, ते परितोष उमा-रमा लहीं॥
निज लोक बिसरे लोकपति, घरकी न चरचा चालहीं।
तुलसी तपत तिहु ताप जग जनु प्रभुछठी-छाया लहीं॥ ६॥

[illegible]

उन्होंने बलिदान एवं पूजाकी सामग्री और मूल्किामणि आदि लाकर सजा रक्खी हैं । जिन देवताओं और देवियोंका अपने हितके लिये हृदयसे आदरपूर्वक पूजन करते हैं वे सब लोगोंसे परिचय करके उन्हें यन्त्र-मन्त्रोंका प्रयोग सिखा देते हैं ॥ ४ ॥ सुवासिनी, गुरुजन, पुरजन, पाहुने, सुर-सुन्दरियाँ, देवता, मुनि और याचक, इन सबमें जो जिस योग्य हैं—जिनकी जैसी योग्यता है, महाराजने उन्हें वैसी ही पहरावनी देकर पूर्णकाम किया है और वे भी जयजयकार करते हुए उन्हें आशीर्वाद देते हैं तथा तुलसीदास-जीके समान ही हृदयमें आनन्द मानते हैं । 'जिस प्रकार आज हुआ है उसी प्रकार कल और परसों भी जागरण होगा' ऐसा कहकर न्यौता दिया गया है। वे लोग धन्य एवं पुण्यनिधि हैं जो उस समय आनन्दमय जीवन पाकर जी रहे थे ॥ ५ ॥ बड़े-बड़े देवता और नागगण भी महाराजके सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्न होते हैं । सुंदरी स्त्रीके रूपमें लक्ष्मीजी और सखीरूपमे अणिमादिक सिद्धियाँ उनकी परिचर्या करती हैं । अणिमादि सिद्धियाँ, शारदा और पार्वतीजी उन बालकोंका लालन-पालन करती हैं । पार्वती और लक्ष्मीजीको जो सुख सारे जन्ममें नहीं मिला वह इस समय प्राप्त हुआ है* । लोकपालगण अपने लोकोंको भूल गये । वे अपने घरोंकी चर्चा भी नहीं चलाते । तुलसीदासजी कहते है कि तीनों तापोंसे तपे हुए लोकको मानो प्रभुकी छठीरूप छाया प्राप्त हो गयी है ॥ ६ ॥

---

* क्योंकि यहाँ भगवान् उन्हें बालरूपसे प्राप्त हुए हैं ।

सुनत सुआसिनि लै चलीं गावत [illegible]
उमा-रमा, सारद-सची, लखि सुनि [illegible]
निज-निज रुचि वेष विरचिकै हिलि-मिलि [illegible]
तेहि अवसर तिहु लोककी सुदसा [illegible]
चारु चौक बैठत भईं भूप-भामिनी [illegible]
गोद मोद-मूरति लिए, सुकृती [illegible]
सुख-सुखमा, कौतुक-कला देखि-सुनि [illegible]
सो समाज कहँ बरनिकै, ऐसे [illegible]
लगे पढ़न रच्छा-ऋचा [illegible]
गगन सुमन-झरि, जयजय, बहु [illegible]
भए अमंगल लंकमें, [illegible]
भुवन चारिदसके बड़े [illegible]
बाल बिलोकि अधरबनी हँसि [illegible]
सुभको सुभ, मोद मोदको, [illegible]
आलबाल कल कौसिला, [illegible]
कंद सकल आनंदको [illegible]
जोहि, जानि, जपि, जोरिकै [illegible]
'जय जय जय करुनानिधे ! [illegible]
'सत्यसंध ! साँचे सदा [illegible]
प्रनतपाल ! पाये सही, [illegible]
भूमिदेव देव देखिकै [illegible]
बोलि सचिव सेवक [illegible]
देहु जाहि जोइ [illegible]
लगे देन हिय [illegible]

पूरे गये। उनमें नाम लिख-लिखकर यह सूचित किया गया कि अमुक बैल अमुक रंग का हुआ है। तालाब और बावड़ियोंको भर-भरकर उनमें अमृत-सा जल भरा गया है ॥ ७ ॥ सूत-पुत्रोंने चार ही पलमें सारे काम बना लिये। इस समय दशरथपुरीने अपनी छविसे देवपुरीको भी लज्जित कर दिया है ॥ ८ ॥ देवताओंके अपने-अपने विमान सजाकर आनन्दपूर्वक आये और अति हर्षित होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे, मानो उन्हें गया हुआ धन फिर मिल गया हो ॥ ९ ॥ वेदपाठके लिये चारों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मण वरण किये गये हैं। उनमें ऋग्वेदी तो स्वयं ऋषि वसिष्ठजी ही हैं, जिनकी महिमा सारा जगत् जानता है ॥ १० ॥ उन्होंने वेदविधि और वेदविधि सबके कर सुमन्त्र जीसे कहा—चौथेपन राजाको बड़े ही भाग्यसे ये सहित पुत्रवधूएँ ॥ ११ ॥ यह सुनते ही बड़भागिनी सुवासिनी स्त्रियाँ उन्हें सती हुई ले चलीं। यह दृश्य देख और सुनकर पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती और सभी जाति प्रसन्न हुईं ॥ १२ ॥ वे अपनी-अपनी गोदके अनुरूप वेष बनाकर झिल-मिलकर उनके साथ हो लीं। उस समय मानो तीनों लोकोंका भाग्य जग गया ॥ १३ ॥ सुन्दर चौकोंमें बैठे हुए राजा दशरथजीने बालकोंको जिस प्रेमसे कन्यादान दे रहे हैं; चतुरजन उन्हें देख रहे हैं ॥ १४ ॥ उस समयके सुख, सौन्दर्य और कौतुककी कथा देख-सुनकर सुनेत्रा सरस्वती हो जाती है; मन ऐसे कौन कवि हैं जो उस समयका वर्णन कर सकें ॥ १५ ॥ फिर कविकुल वसिष्ठजी स्मरण*

---

* ॐ अङ्गिरसमेवाद्येऽहं हृदयादिमेवानये।
अन्न ये तुमनसो त्वं ओम् तत्सत् ब्रह्म ॥

दिखायी देते हैं, मानो साक्षात् कुबेर ही हों ॥२४॥ वसिष्ठजीने विचार करके भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके भी नाम रखे। महाराज दशरथके चारों पुत्र मानो अर्थ, धर्मादि चारों फलोंको भी फल देनेवाले हैं ॥२५॥ इस प्रकार राजकुमारोंके सुन्दर एवं अनुपम नाम रक्खे गये। उस समयसे नगरकी स्त्रियोंके सारे शोक और सङ्कट (राजाके पुत्रहीन रहनेका शोक और राजाके बाद पुररक्षकके अभावसे होनेवाला संकट) दूर हो गये ॥ २६ ॥ विधाताने सबके सभी मनोरथ सब प्रकार पूर्ण कर दिये। अब भी उनका गान या श्रवण करनेसे तुलसीदास तथा सबकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी ॥ २७ ॥

## दुलार

राग बिलावल

[ ७ ]

सुभग सेज सोभित कौसिल्या रुचिर राम-सिसु गोद लिये।
बार बार बिधुबदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये ॥ १ ॥
कबहुँ पौढ़ि पयपान करावति, कबहुँ राखति लाइ हिये।
बालकेलि गावति हलरावति, पुलकति प्रेम-पियूष पिये ॥ २ ॥
बिधि-महेस, मुनि सुर सिहात सब, देखत अबुध ओट दिये।
तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न दिये ॥ ३ ॥

[illegible]

मनोहर तोतली बोली बोलकर मुझे 'माँ' कहकर बुलाओगे ॥ ३ ॥ अपनी मनोरथरूपी सुन्दर बेलको सफल हुई देख पुरवासी, मन्त्रि-मण्डल, राजा, रानी, सेवक, सखा और सहेलियाँ कब अपने नेत्रोंका लाभ लूटेंगी ॥ ४ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस सुखकी लालसामें शिव, शुकदेव और सनकादि विरक्त जन भी लट्टू हुए रहते हैं उसी सुखसमुद्रमें कौसल्या भी मग्न हैं, तो भी उन्हें प्रेमकी प्यास लगी हुई है ॥ ५ ॥

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया
प्रेम-पुलकि, उर लाइ सुवन सब, कहति सुमित्रा मैया ॥ १ ॥
सुंदर तनु सिसु-बसन-बिभूषन नखसिख निरखि निकैया ।
दलि तृन, प्रान निछावरि करि करि लैहैं मातु बलैया ॥ २ ॥
किलकनि, नटनि, चलनि, चितवनि, भाज मिलनि मनोहर तैया ।
मनि-खंभनि प्रतिबिंब-झलक छबि छलकिहैं भरि अँगनैया ॥ ३ ॥
बालबिनोद मोद मंजुल बिधु लीला ललित जुन्हैया ।
भूपति पुन्य पयोधि उमँग घर घर आनँद-बधैया ॥ ४ ॥
ह्वैहैं सकल सुकृत सुख भाजन लोचन-लाहु लुटैया ।
अनायास पाइहैं जनमफल तोतर बचन सुनैया ॥ ५ ॥
भरत राम रिपुदवन लषनके चरित सरित अन्हवैया ।
तुलसी तबकेसे अजहुँ जानिब रघुबर-नगर-बसैया ॥ ६ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

राम-सिसु सानुज चरित चारु गाइ-सुनि
सुजनन सादर जनम-लाहु लियो है।
तुलसी बिहाइ दसरथ दसचारिपुर
ऐसे सुखजोग बिधि बिरच्यो न बियो है ॥ ४ ॥

माताओंने बालकोंको तेल और उबटन लगाकर स्नान कराया और फिर नेत्रोंको आँजकर अति प्रीतिपूर्वक गोरोचनका तिलक लगाया। भृकुटिपर अति अनुपम काजरकी बिंदी लगायी। शीशपर छोटे-छोटे बाल सुशोभित हैं, जो देखनेवालेके चित्तको हर लेते हैं ॥ १ ॥ सुमित्राको अति आनन्दपूर्वक बालकोंको गोदमें लेकर दुलार करते देख देवगण कहते हैं, इस समय सभीका पुण्य प्रकट हुआ है। ये माता, पिता, प्रिय परिजन और पुरवासीलोग धन्य हैं, जो अपने पुण्यपुञ्ज भगवान् रामको देख-देखकर प्रेमरस पान कर रहे हैं ॥ २ ॥ इनके अति ललित और लाल-लाल नन्हे-नन्हे चरण-कमल तथा सुहावनी चालकी छविको देखकर ही सुकविजनोंका हृदय जीवित रहता है। बालचापल्ययुक्त भगवान् राम ऐसे जान पड़ते हैं मानो शोभाकी दीवटपर रूपमय दीपक बालकेलिरूप वायुके झकोरोंसे झिलमिला रहा हो ॥ ३ ॥ सत्पुरुषोंने आदरपूर्वक अनुज सहित बालक रामका चारु [illegible] सुनकर अपने जन्मका लाभ पाया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि ब्रह्माने महाराज दशरथको छोड़कर ऐसा सुखका योग चौदह भुवनमें और कहीं नहीं रचा ॥ ४ ॥

११

राम-सिसु गोद महामोद भरे दसरथ,
कौसिलाहु ललकि लपनलाल लये हैं।

जद्यपि बुधि, बय, रूप, सील, गुन सबै चारु चारयो भाई।
तदपि लोकलोचनचकोरससि राम भगतसुखदाई ॥ २ ॥

सुर, नर, मुनि करि अभय, दनुज हति, हरहि धरनि गरुआई।
कीरति बिमल बिस्वअघमोचनि रहिहि सकल जग छाई ॥ ३ ॥

जाके चरनसरोज कपट तजि जे भजहिं मन लाई।
ते कुल जुगल सहित तरिहैं भव, यह न कछू अधिकाई ॥ ४ ॥

सुनि गुरबचन पुलक तन दंपति, हरष न हृदय समाई
तुलसिदास अवलोकि मातुमुख प्रभु मनमें मुसुकाई ॥ ५ ॥

हे राजन्! सुनिये, [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ ३ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ ४ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ ५ ॥

[illegible]

[illegible] उनके [illegible] देखने लगे। उस समय [ उनके [illegible] दर्शन पाकर ] उनके हृदयमें आनन्द नहीं समाता ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन्होंने उनके [illegible] दर्शन किये और [illegible] और [illegible] दर्शन किये ॥ ५ ॥ [illegible] कहते हैं—[illegible] हो [illegible] हृदयको [illegible] हुआ। उन्होंने [illegible] किया और वे भी [illegible] ॥ ६ ॥

[illegible]

१८

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं।
कर पद मुख चख कमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावौं ॥ १ ॥
बाल-बिनोद-मोद-मंजुल-मनि किलकनि-खानि खुलावौं।
तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति मृगनयनि बुलावौं ॥ २ ॥
तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं ॥ ३ ॥

[illegible]

रूप वृक्षमें फैलकर मानो रात्रि अपनी छवि छिटका रही है ॥ ३ ॥ हे तात ! अब तुम्हें जमुहाई आ रही है और तुम अलसा रहे हो। मैं तुम्हारी आदत अच्छी तरह जान गयी हूँ। अच्छा, मैं गा-गाकर और हिला-डुलाकर सुखमयी निद्राको बुलाती हूँ' ॥ ४ ॥ फिर सुमित्रा मैया मग्नमनसे पुचकार-पुचकारकर 'मेरे बछरा ! मेरे छबीले छौना !' आदि कहने लगी। तुलसीदासजी कहते हैं—उस समयका भाइयोंके सहित प्रभुका वह ललित बालभाव मेरे हृदयमें उमंगें मारता है ॥ ५ ॥

[ २० ]

ललन लोने लेरुआ, बलि मैया।
सुख सोइए नींद-बेरिया भई, चारु-चरित चार्‌यौ भैया ॥ १ ॥
कहति मल्हाइ-लाइ उर छिन-छिन, 'छगन छबीले छोटे छैया।
मोद-कंद कुल-कुमुद-चंद्र मेरे रामचंद्र रघुरैया' ॥ २ ॥
रघुबर बालकेलि संतनकी सुभग सुभद सुरगैया।
तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया ॥ ३ ॥

हे ललन ! हे लोने बाल ! माता बलि जाती है। लाल ! अब नींदका समय हो गया है; अतः मनोहर चरितवाले चारों भाई ! सुखपूर्वक सो जाओ ॥ १ ॥ बालकोंको छातीसे चिपटाकर माता पुचकार-पुचकारकर कहती है, 'हे मेरे छोटे छबीले छौना, हे मेरे आनन्दकन्द, हे कुलरूप कुमुदवनके लिये चन्द्रमा, हे मेरे रघुकुल-भूषण राम !' आदि ॥ २ ॥ रघुनाथजीकी बाललीला संतजनोंके लिये अति सुन्दर और शुभप्रद कामधेनु ही है। तुलसीदास उनका प्रेमरूप दूध दुहते हुए उसकी घैया (थनसे निकलती हुई दूधकी

और दुःख अपने ऊपर ले लूँगी ॥ ३ ॥ राजा और रानीको अपने पुत्र तथा कुटुम्बियोंके सहित देखकर मैं नेत्रोंका फल पाऊँगी और वहाँ—तुलसीदास कहते हैं कि—उन सबके साथ मिलकर रघुवंश-तिलक भगवान् रामके पवित्र चरित्र गाऊँगी ॥ ४ ॥

राग आसावरी

[ २२ ]

कनक-रतनमय पालनो रच्यो मनहुँ मार-सुतहार ।
विविध खेलौना, किंकिनी, लागे मंजुल मुकुताहार ॥
रघुकुल-मंडन राम लला ॥ १ ॥
जननि उघटि, अन्हवाइकै, मनिभूषन सजि, लिये गोद ।
पौढ़ाए पटु पालने, सिसु निरखि मगन मन मोद ॥
दसरथनंदन राम लला ॥ २ ॥
मदन, मोरकै चंदकी झलकनि, निदरति तनु-जोति ।
नील कमल, मनि, जलदकी उपमा कहे लघु मति होति ॥
मातु-सुकृत-फल राम लला ॥ ३ ॥
लघु लघु लोहित ललित हैं पद, पानि, अधर एक रंग ।
को कवि जो छवि कहि सकै नखसिख सुंदर सब अंग ॥
परिजन-रंजन राम लला ॥ ४ ॥
पग नूपुर, कटि किंकिनी, कर-कंजनि पहुँची मंजु ।
हिय हरिनख अद्भुत बन्यो मानो मनसिज मनि-गन-गंजु ॥
पुरजन-सिरमनि राम लला ॥ ५ ॥
लोयन नील सरोजसे, भ्रूपर मसिबिंदु बिराज ।
जनु बिधु-मुख-छबि-अमियको रच्छक राख्यो रसराज ॥
सोभासागर राम लला ॥ ६ ॥

गीत सुमित्रा सखिन्हकै सुनि सुनि सुर मुनि अनुकूल।
दै असीस जय जय कहैं हरषैं बरषैं फूल॥
सुर-सुखदायक राम लला॥१५॥
बालचरितमय चंद्रमा यह सोरह-कला-निधान।
चित-चकोर तुलसी कियो कर प्रेम-अमिय-रसपान॥
तुलसीको जीवन राम लला॥१६॥

सुवर्ण और मणियोंसे जड़ा हुआ मनोहर पालना है, जिसे मानो कामदेवरूप बढ़ईने बनाया है। उसमें तरह-तरहके खिलौने, घुँघरू और मनोहर मोतीकी मालाएँ लगी हुई हैं। उसीमें रघुकुल-भूषण रामलला विराजमान हैं॥ १॥ माताने दशरथनन्दन रामललाको उबटन लगा, स्नान करा और मणिमय आभूषणोंसे सुसज्जित कर गोदमें लिया, और फिर उस सुन्दर पालनेमें सुला दिया। बालक रामको देखकर माताका मन आनन्दमग्न हो रहा है॥ २॥ रामके श्याम शरीरकी कान्ति कामदेव और मोरपंखकी चन्द्रिकाकी आभाका भी निरादर करती है। यदि उसकी उपमा नील कमल, नील मणि अथवा नील मेघसे दी जाय तो बुद्धिकी लघुता प्रकट होती है। रामलला तो माताके पुण्यपुञ्जका फल ही है॥ ३॥ रामके नन्हे-नन्हे पाँव, हाथ और अधर एक ही रंगके, अति सुन्दर और अरुण वर्ण हैं। नखसे सिखतक उनके सभी अङ्ग सुन्दर हैं। ऐसा कौन कवि है जो इनकी छविका वर्णन कर सके? रामलला अपने सभी कुटुम्बियोंको आनन्दित करनेवाले हैं॥ ४॥ रामके चरणोंमें नूपुर, कटि प्रदेशमें किंकिणी, करकमलोंमें मनोहर पहुँची और हृदयमें अति अद्भुत बघनहा शोभायमान है, जो मानो कामदेवकी मणियोंका दर है। रामलला —

॥ १२ ॥ जिस समय भगवान् राम अपने भाई और साथी लकोंको संग लेकर गेंद खेलने जायँगे उस समय लङ्कामें खलबली ; जायगी और स्वर्गमें बाजे बजने लगेंगे, क्योंकि रामलला शत्रुदल- । दमन करनेवाले हैं ॥ १३ ॥ जिस समय रामचन्द्रजी हाथी, ड़े और रथ सँभालकर मृगयाके लिये चलेंगे उस समय रावणके दयमें धड़कन होने लगेगी कि कहीं धनुष लेकर मेरी ओर न ड़ पड़ें, क्योंकि श्रीरामलला शत्रुरूप हाथीके लिये साक्षात् सिंह ो हैं ॥ १४ ॥ सुमित्रा और सखियोंके गीत सुन-सुनकर देवता ौर मुनिजन प्रसन्न होते हैं तथा आशीर्वाद देते हुए जय-जयकार र हर्षित हो फूलोंकी वर्षा करते हैं। रामलला देवताओंको आनन्द दान करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ तुलसीदासने प्रेमामृतरसका पान र चित्तरूप चकोरके लिये यह षोडशकलानिधान बालचरितरूप चन्द्रमा* रचा है। रामलला तो तुलसीदासके जीवन ही हैं ॥ १६ ॥

राग कान्हरा

२३

पालने रघुपति झुलावै।
लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै ॥ १ ॥
केकिकंठ दुति स्यामबरन बपु, बाल-बिभूषन बिरचि बनाए।
अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए ॥ २ ॥
सिसु-सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लव लाए।
मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सो सचु पाए ॥ ३ ॥

---

* इन सोलह पदोंमें [illegible]
है। इनमें एक-एक पद चन्द्रमाकी [illegible] सूचक
है। इस प्रकार इसमें षोडशकलानिधान चन्द्रमाकी [illegible] की है।

उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत।
मनहुँ उभय अंभोज अरुन सों बिधु-भय बिनय करत अति भारत।
तुलसिदास बहु-बास-बिबस अलि गुंजत, सुछबि न जाति बखानी
मनहुँ सकल श्रुति ऋचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बर बानी

माता कौसल्या पालनेमें रघुनाथजीको झुला रही हैं, और [illegible] सुन्दर [illegible] नाम ले-लेकर प्रभुकी सुन्दर कीर्ति गा रही [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] कान्तिके समान देदीप्यमान श्याम शरीर [illegible] बनाये गये हैं। अलकावली घुँघरा [illegible] तथा दोनों नेत्र [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] समय बालस्वभाव [illegible] मुखके पास [illegible] सुन्दर सर्प आनन्दपूर्वक [illegible] है ॥ [illegible] और [illegible]

[illegible]

मधर-पानि-पद लोहित लोने। सर-सिँ गार-भव सारस सोने ॥३॥
किलकत निरखि बिलोल खेलौना। मनहुँ बिनोद लरत छवि छौना॥
रंजित अंजन कंज-बिलोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥५॥
लस मसिबिंदु बदन-बिधु नीको। चितवत चितचकोर तुलसीको ६

श्रीरामलला पालनेमें झूलते हुए शोभा पा रहे हैं और बड़भागिनी माताएँ उनकी ओर निहार रही हैं ॥ १ ॥ भगवान्‌के शरीरमें अति मृदुल और मञ्जुल श्यामता सुशोभित है, जिसपर बालोचित आभूषणोंकी झाँई झलक रही है ॥ २ ॥ प्रभुके अति सुन्दर अरुणवर्ण ओठ, हाथ और चरण ऐसे जान पड़ते हैं मानो शृङ्गारसरोवरमें उत्पन्न सोनेके कमल हों ॥ ३ ॥ खिलौनेको हिलता हुआ देखकर किलकारी मारते हैं, मानो छविके छोटे-छोटे बालक खेल-खेलमें लड़ रहे हों ॥ ४ ॥ नयनकमलोंमें अञ्जन आँजा हुआ है तथा मस्तकपर गोरोचनका तिलक सुशोभित है ॥ ५ ॥ मनोहर मुखचन्द्रपर अति सुन्दर काजलकी बिंदी लगी हुई है। उस मुखमयङ्कको तुलसीका चित्तरूप चकोर निहार रहा है ॥ ६ ॥

राग कल्याण

[ २५ ]

राजत सिसुरूप राम सकल गुन-निकाय-धाम,
कौतुकी कृपालु गहे जानु-पानि-वारी।
नीलकंज-जलदपुंज-मरकतमनि-सरिस स्याम,
काम कोटि सोभा अंग अंग उपर वारी ॥१॥
हाटक-मनि-रत्न-खचित रचित इंद्र-मंदिराभ,
इंदिरानिवास सदन विधि रच्यो सँवारी।

[illegible]

राग कान्हरा

[ २६ ]

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए।
नील-जलद-तनु-स्याम राम-सिसु जननि निरखि मुख [illegible]
बंधुक सुमन अरुन पदपंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए।
नूपुर जनु मुनिबर-कलहंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसाए
कटि मेखल, बर हार ग्रीव-दर, रुचिर बाँह भूषन पहिराए।
उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख हम मध्य मनिगन बहु लाए॥३॥
सुभग चिबुक, द्विज, अधर नासिका, श्रवन, कपोल मोहि
अति भाए।
भ्रू सुंदर करुनारस पूरन लोचन मनहु जुगल जलजाए॥४॥
भाल बिसाल ललित लटकन बर बालदसाके चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुर सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तमके
गन आए॥५॥
उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढ़ाए।
नील जलदपर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छपाए॥६॥
अंग अंगपर मार निकर मिलि छाबिसमूह लै लै जनु छाए।
तुलसिदास रघुनाथ रूप-गुन ता कहाँ जो बिधि होहिं बनाए॥७॥

[illegible] नील मेघके समान
श्याम [illegible] मानो उन्हें अपने पास
बुलाया॥ [illegible] अरुण चरणकमलोंमें
अङ्कुश [illegible] उनमें जो नूपुर हैं वे ऐसे
जान [illegible] उनमें मुनिजनरूप
कलहंसोंका [illegible] प्रभुके कटिप्रदेशमें मेखला

[illegible] ग्रीवामें सुन्दर हार और सुन्दर भुजाओंमें आभूषण पहनाये [illegible] हैं तथा वक्षःस्थलमें मनोहर श्रीवत्सचिह्न, व्याघ्रनख और अनेक [illegible]णियोंसे जड़ा हुआ सुवर्णमय पदिक सुशोभित है ॥ ३ ॥ प्रभुकी [illegible]न्दर ठोड़ी, दन्तावली, अधरपुट, नासिका, कर्ण और कपोल मुझे बड़े [illegible] प्रिय हैं। भगवान्‌की मनोहर भृकुटियाँ करुणरसपूर्ण हैं तथा नेत्र [illegible]नो दो कमल ही हैं ॥ ४ ॥ विशाल भालपर अति सुन्दर श्रेष्ठ लटकन [illegible]टके हुए हैं और बाल्यावस्थाका सुन्दर केशकलाप शोभायमान है। वे [illegible]ब ऐसे जान पड़ते हैं मानो दोनों गुरुओं ( बृहस्पति और शुक्र ) [illegible] शनि एवं मङ्गलको आगे कर अन्धकारके समूह चन्द्रमासे मिलने [illegible]ये हों। [ यहाँ लटकनमें जो सुवर्ण है वह बृहस्पति है, हीरा शुक्र [illegible], लाल मङ्गल है और नीलमणि शनि है। उन्हें आगे कर केशकलापरूप अन्धकारसमूह मुखरूप चन्द्रमासे मिलने आया है ] ॥ ५ ॥ जिस समय [illegible]ताने पीताम्बर उढ़ाया उस समय तो एक अद्भुत उपमा योग्य शोभा [illegible] हो गयी मानो श्यामशरीररूप नील मेघपर अनेक चमकीले आभूषणरूप नक्षत्रगणको देदीप्यमान देख पीताम्बररूप चञ्चला चपलाने अपना स्वभाव छोड़कर उसे छिपा लिया ॥ ६ ॥ भगवान्‌के अङ्ग-अङ्गपर मानो कामके समूह अपने छविपुञ्जको लेकर छाये हुए हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीके रूप और गुण यदि विधाताके बनाये हुए हों तो कुछ कहे भी जा सकते हैं ॥ ७ ॥

राग केदारा

२७

रघुबर बाल छबि कहौं बरनि।
सकल सुखकी सींव, कोटि-मनोज-सोभा-हरनि।

बसी मानहु चरन-कमलनि अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रुनझुनु करनि ॥२॥
मंजु मेचक मृदुल तनु मनुहरनि भूषन भरनि।
जनु सुभग सिंगार सिसु तरु फरयौ है अद्भुत फरनि ॥३॥
भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि।
रहे कुहरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि ॥४॥
लसत कर-प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि चरनि।
जनु जलज-संपुट सुछवि भरि भरि धरति उर धरनि ॥५॥
पुन्यफल अनुभवति सुतहि बिलोकि दसरथ-घरनि।
बसति तुलसी-हृदय प्रभु-किलकनि ललित लरखरनि ॥६॥

रघुनाथजीकी बालछविका ध्यान करके कहता हूँ, वह सकल सुखकी सीमा और करोड़ों कामदेवोंकी शोभाका हरण करनेवाली है ॥१॥ अरुणता मानो सूर्यका त्याग कर उनके चरणकमलोंमें ही आ बसी है। मनोहर नूपुर और किङ्किणीका रुनझुन शब्द मनको हरे लेता है ॥२॥ अति मनोहर और मृदुल श्याम शरीरपर आभूषणोंकी सजावट ऐसी जान पड़ती है मानो अति सुन्दर शृङ्गाररसका नन्हा-सा पौधा अद्भुत फलोंसे सम्पन्न हुआ हो ॥३॥ [ सौन्दर्यकी ] लड़ाईमें प्रभुकी भुजाओंने सर्पोंको, नेत्रोंने कमलोंको तथा मुखने चन्द्रमाको जीत लिया है। इसीसे वे क्रमशः बिल, जल तथा आकाशमें जा बसे हैं। [ यह देखकर ] अन्य उपमाएँ ( उपमान ) भी डरकर दूर भाग गयी हैं ॥४॥ मणिमय आँगनमें घुटनोंके बल चलते समय जो हाथोंका प्रतिबिम्ब पड़ता है वह ऐसा जान पड़ता है मानो धरणी छविको कमलके संपुटमें भर-भरकर अपने हृदयमें धारण कर रही

राग बिलावल

[ ३१ ]

आँगन खेलत आनँदकंद । रघुकुल-कुमुद-सुखद चारु चंद ॥ १ ॥
सानुज भरत लषन सँग सोहैं । सिसु-भूषन भूषित मन मोहैं ॥
तन-दुति मोरचंद जिमि झलकैं । मनहु उमगि अँग अँग छबि छलकैं ॥
कटि किंकिनि पग पैंजनि बाजैं । पंकज पानि पहुँचियाँ राजैं ॥ २ ॥
कदुला कंठ बघनहा नीके । नयन-सरोज मयन-सरसीके ॥ ३ ॥
लटकन लसत ललाट लटूरी । दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरी ॥
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बुंदा । ललित बदन बलि बालमुकुंदा ॥ ४ ॥
कुलही चित्र बिचित्र झँगूली । निरखत मातु मुदित मन फूली ॥
गहि मनिखंभ डिंभ डगि डोलत । कलबल बचन तोतरे बोलत ॥ ५ ॥
किलकत, झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि । देत परम सुख पितु अरु अंबनि ॥
सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है । गावत प्रेम-पुलकि तुलसी है ॥ ६ ॥

[illegible]

माता बार-बार कहती है—हे सुजान-शिरोमणि कृपानिधान रामचन्द्र ! जागो। प्यारे ! देखो, सवेरा हो गया। आप कमलके समान विशाल नयनोंवाले तथा प्रेमरूप चातीके हंस हैं। आपके मनोहर मुखारविन्दपर करोड़ों कामदेव निछावर हैं ॥१॥ देखो, बालसूर्य उदित हुआ है, रात्रि बीत चुकी है, चन्द्रमा किरणहीन हो चला है, दीपकका प्रकाश मन्द पड़ गया है और तारामण्डलकी ज्योति फीकी पड़ गयी है; मानो ज्ञानका घन प्रकाश होनेपर सम्पूर्ण भवविलास शान्त हो गये हों तथा आशा और भयरूप अन्धकारको सन्तोषरूप सूर्यके तेजने दग्ध कर दिया हो ॥२॥ हे मेरे प्यारे प्राणजीवनधन पुत्र ! तुम कान लगाकर सुनो। देखो, ये जो मुखर पक्षिसमूह मधुर शब्द कर रहे हैं, सो ऐसे जान पड़ते हैं मानो वेद, बन्दीजन, मुनिवृन्द, सूत और मागध आदि 'हे वैदभरे ! तुम्हारी जय हो, जय हो', ऐसा कहकर विरदका बखान करते हों ॥३॥ देखो, कमलवृन्द खिल गये और [ उनमें सायंकालको मुँदे हुए ] भ्रमरगण उन्हें छोड़कर सुमधुर ध्वनि करते हुए अलग-अलग चल दिये, जैसे वैराग्य होनेपर आपके प्रेमोन्मत्त सेवक सब प्रकारके शोकोंके कूपरूप घरको त्याग कर आपका गुणगान करने लगते हैं ॥४॥ माताके ये अति मधुर और प्रिय वचन सुनते ही अतिशय दयालु भगवान् राम जग पड़े। इससे सारे जंजाल दूर हो गये तथा सब प्रकारके दुःख-समूह दलित हो गये। तुलसीदास कहते हैं, भगवान्का मुखारविन्द देखकर सभी भक्तजन अति आनन्दित हुए और उनके भवजनित बन्धन — वे एवं राग-द्वेषादि सारे द्वन्द्व अत्यन्त मन्द हो गये ॥५॥

करनेके लिये उपवनको चले। उस समय उनका मुख निहारकर माताने अपने बड़े पुण्य समझे। तुलसीदासजी कहते हैं—हे नाथ! मुझे दीन जानकर अभय कीजिये और अपने संग लगा लीजिये। मुझे ऐसी निर्मल बुद्धि दीजिये जिससे मैं आपके पवित्र चरित्र गा सकूँ॥ २-३॥

राग नट

४०

खेलन चलिये आनँदकंद।
सखा प्रिय नृपद्वार ठाढ़े बिपुल बालक-बृंद॥ १॥
तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक-दास।
बपुष-बारिद बरषि छबि जल हरहु लोचन-प्यास॥ २॥
बंधु-बचन बिनीत सुनि उठे मनहुँ केहरि-बाल।
ललित लघु सर-चाप कर उर नयन बाहु बिसाल॥ ३॥
चलत पद प्रतिबिंब राजत आजुर सखमा पुंज।
प्रेमबस प्रति चरन महि मानो दीन आसन कंज॥ ४॥
निरखि परम बिचित्र सोभा चकित चितवहिं मात।
हरष-बिबस न जात कहि निज भवन बिहरत तात॥ ५॥
देखि तुलसीदास प्रभु-छबि रहे सब पुर रोकि।
थकित निकर चकोर मानो सरदहद बिलोकि॥ ६॥

[illegible]

बिजलीकी छवि छीन ली है। मुख सुंदर है तथा सिरपर जरीके कामकी पगिया विराजमान है ॥ १ ॥ शरीरमें अवस्थाके अनुसार अनेक प्रकारके आभूषण हैं, जिन्हें देखकर हृदयमें प्रेमकी लहर-सी आती है। भगवान्‌की मनोहर मूर्तिकी सूरत तुलसीदाससे नहीं कही जाती। उसे वही जान सकता है जिसके हृदयमें वह पीड़ाके समान कसकती है ॥ २ ॥

राग टोड़ी

[ ४५ ]

राम-लषन इक ओर, भरत-रिपुदवन लाल इक ओर भये।
सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये ॥१॥
कंदुक-केलि-कुसल हय चढ़ि चढ़ि, मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये।
कर-कमलनि बिचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये ॥२॥
ब्योम बिमाननि बिबुध बिलोकत खेलक पेखक छाँह छये।
सहित समाज सराहि दसरथहि बरषत निज तरु-कुसुम-चये ॥३॥
एक लै बढ़त, एक फेरत, सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद-मये।
एक कहत भइ हारि रामजूकी, एक कहत भइया भरत जये ॥४॥
प्रभु बकसत गज-बाजि, बसन-मनि, जय-धुनि गगन निसान हये।
पाइ सखा-सेवक-जाचक भरि जनम न दुसरे द्वार गये ॥५॥
नभ पुर परति निछावरि जहँ तहँ, सुर-सिद्धनि बरदान दये।
भूरि-भाग अनुराग उमगि जे गावत-सुनत चरित नित ये ॥६॥
हारे हरष होत हिय भरतहि, जिते सकुच सिर नयन नए।
तुलसी सुमिरि सुभाव-सील सुकृती तेइ जे एहि रंग-रए ॥७॥

[illegible] और लक्ष्मण तथा दूसरी ओर भरत एवं [illegible] उन्होंने [illegible] सुखदायक और समतलभाममें

जाकर गिन-गिनकर साथी बाँट लिये ॥ १ ॥ फिर खेलमें रीझे हुए चारों भाई गेंदके खेलमें सधाये हुए घोड़ोंपर चढ़ फेंटा कसकर खम ठोकते हुए करकमलोंसे विचित्र चौगान खेलने लगे ॥ २ ॥ आकाशमें देवतालोग विमानोंमें चढ़कर देख रहे हैं और खेलनेवालों तथा देखनेवालोंपर छाया किये हुए हैं। देवतालोग दशरथजीकी—उनके समाजके सहित—प्रशंसा करते हैं और कल्पवृक्षके पुष्पोंकी लड़ियाँ बरसाते हैं ॥ ३ ॥ सब बालक प्रेम, आनन्द और विनोदमें मग्न हैं। उनमेंसे एक ओरके बालक गेंदको लेकर आगे बढ़ते हैं तो दूसरी ओरके उन्हें लौटा देते हैं। कोई कहते हैं रामकी हार हुई और कोई कहते हैं भैया भरत जीते हैं ॥ ४ ॥ प्रभु हाथी, घोड़े, वस्त्र और मणियाँ बख्शते हैं; आकाशमें विमानोंसे जयध्वनिके सहित दुन्दुभियाँ बजायी जा रही हैं। प्रभुसे पारितोषिक पाकर सखा, सेवक और याचकगण जन्मभर दूसरेके द्वारपर नहीं गये ॥ ५ ॥ आकाशसे तथा नगरमें जहाँ-तहाँ निछावरकी वर्षा हो रही है तथा देवता और सिद्धगण आशीर्वाद दे रहे हैं। प्रभुके इन नित्य नवीन चरित्रोंको जो लोग प्रेममें भरकर गाते या सुनते हैं वे बड़े ही भाग्यशाली हैं ॥ ६ ॥ भरतजीको खेलमें हार जानेपर तो हर्ष होता है और जीतनेपर सङ्कोचवश उनके सिर और नयन नीचे हो जाते हैं। [अतः भगवान् बार-बार उन्हींको जिता देते हैं।] तुलसीदास कहते हैं प्रभुके ऐसे शील और स्वभावको स्मरणकर जो इसी रंगमें रँगे हुए हैं वे लोग बड़े पुण्यशाली हैं ॥ ७ ॥

[ ४६ ]

खेलि खेल सुखेलनिहारे।
उतरि उतरि, चुचुकारि तुरंगनि, सादर जाइ जोहारे ॥ १ ॥

बंधु-सखा-सेवक सराहि, सनमानि सनेह सँभारे।
दिये बसन-गज-बाजि साजि सुभ साज सुभाँति सँवारे॥ २॥
मुदित नयन-फल पाइ, गाइ गुन सुर सानंद सिधारे।
सहित समाज राजमंदिर कहँ राम राउ पगु धारे॥ ३॥
भूप-भवन घर-घर घमंड कल्यान कोलाहल भारे।
निरखि हरषि आरती-निछावरि करत सरीर बिसारे॥ ४॥
नित नए मंगल-मोद अवध सब, सब बिधि लोग सुखारे।
तुलसी तिन्ह सम तेउ जिन्हके प्रभुतें प्रभु-चरित पियारे॥ ५॥

खेल खेलनेवालोंने खेल समाप्त कर अपने घोड़ोंसे उतर-उतरकर उन्हें चुचकारते हुए श्रीरघुनाथजीको आदरपूर्वक प्रणाम किया॥ १। प्रभुने अपने बन्धु, सखा और सेवकोंकी सराहना तथा सम्मान करते हुए उनके प्रति प्रेम प्रकट किया तथा बहुत-से वस्त्र और सुन्दर साजसे अच्छी तरह सजाये हुए अनेक हाथी-घोड़े दिये॥ २॥ फिर अति आनन्दित हो, नेत्रोंका फल पा देवतालोग भगवान्‌का गुणगान करते हुए आनन्दपूर्वक अपने लोकोंको गये; और रामचन्द्रजीने भी अपने समाजसहित राजमन्दिरको प्रस्थान किया॥ ३॥ राजभवन तथा घर-घरमें अति महान् मङ्गलमय कोलाहल छाया हुआ है। प्रभुको देख-देखकर कौसल्या आदि माताएँ शरीरकी सुध भूलकर हर्षित चित्तसे आरती तथा निछावर कर रही हैं॥ ४॥ इस प्रकार अवधमें नित्यप्रति नया-नया मङ्गल और आनन्द हो रहा है। तुलसीदास कहते हैं, जिन्हें प्रभुसे भी प्रभुके चरित्र अधिक प्रिय हैं वे लोग भी उन (अवधवासियों) के ही समान हैं॥ ५॥

## विश्वामित्रजीका आगमन

राग सारंग

[ ४७ ]

चहत महामुनि जाग जयो।
नीच निसाचर देत दुसह दुख, कृस तनु ताप तयो ॥ १ ॥
सापे पाप, नये निदरत खल, तब यह मंत्र ठयो।
विप्र-साधु-सुर-धेनु-धरनि-हित हरि अवतार लयो ॥ २ ॥
सुमिरत श्रीसारंगपानि छनमें सब सोच गयो।
चले मुदित कौसिक कोसलपुर, सगुननि साथ दयो ॥ ३ ॥
करत मनोरथ जात पुलकि, प्रगटत आनंद नयो।
तुलसी प्रभु-अनुराग उमगि मग मंगल-मूल भयो ॥ ४ ॥

महामुनि विश्वामित्रजी यज्ञ पूर्ण करना चाहते हैं, परन्तु नीच निशाचरगण दुःसह दुःख देते हैं। अतः उस चिन्तासे सन्तप्त रहनेके कारण उनका शरीर सूख गया है ॥ १ ॥ वे यदि शाप देते हैं तो उन्हें पाप लगता है और यदि झुकते हैं तो दुष्ट निशाचरादि उनका तिरस्कार करते हैं। अतः उन्होंने यह विचार किया—'ब्राह्मण, साधु, देवता, गौ और पृथ्वीके हितके लिये इस समय श्रीहरिने अवतार लिया है' ॥ २ ॥ इस प्रकार श्रीशार्ङ्गपाणिकी याद आते ही क्षणभरमें उनका सारा शोक दूर हो गया। अतः मुनिवर कौशिक प्रसन्न चित्तसे अयोध्यापुरीको चल दिये। इस समय शकुनोंने भी उनका साथ दिया ॥ ३ ॥ वे मार्गमें तरह-तरहके मनोरथ करते जाते थे; उस समय उनके शरीरमें पुलकावली हो आनेसे नया-नया आनन्द प्रकट होता था। तुलसीदास कहते हैं—प्रभु-प्रेमके अनुरागकी उमङ्गमें उन्हें वह मार्ग बड़ा मङ्गलमय हो गया ॥ ४ ॥

[ ४८ ]

आजु सकल सुकृत फलु पाइहौं।
सुखकी सींव, अवधि आनँदकी, अवध बिलोकि हौं पाइहौं ॥ १ ॥
सुतनि सहित दसरथहि देखिहौं, प्रेम पुलकि उर लाइहौं।
रामचंद्र मुखचंद्र सुधा-छबि नयन-चकोरनि प्याइहौं ॥
सादर समाचार नृप बुझिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं।
तुलसी ह्वै कृतकृत्य आश्रमहिं राम लषन लै आइहौं ॥ ३ ॥

'आज मैं सम्पूर्ण शुभ कर्मोंका फल पा लूँगा, क्योंकि सुखकी सीमा तथा आनन्दकी अवधि अवधपुरीको देख पाऊँगा ॥ १ ॥ पुत्रोंके सहित दशरथजीको देखूँगा और प्रेमसे पुलकित हो उन्हें हृदयसे लगाऊँगा तथा रामचन्द्रजीके मुखचन्द्रकी छविरूप सुधाको अपने नेत्ररूप चकोरोंको पान कराऊँगा ॥ २ ॥ महाराज आदरपूर्वक मुझसे सारे समाचार पूछेंगे और मैं उन्हें सारी कथा सुनाऊँगा। तुलसीदास कहते हैं, फिर मैं कृतकृत्य होकर राम और लक्ष्मणको अपने आश्रमपर ले आऊँगा ॥ ३ ॥

राग नट

[ ४९ ]

देखि मुनि! रावरे पद आज।
भयो प्रथम गनतीमें अबतें हौं जहँलौं साधु-समाज ॥ १ ॥
चरन बंदि, कर जोरि निहोरत, "कहिय कृपा करि काज।
मेरे कछु न अदेय राम बिनु, देह-गेह सब राज" ॥ २ ॥
भली कही भूपति त्रिभुवनमें को सुकृती-सिरताज?
तुलसि राम-जनमहितें जनियत सकल सुकृतको साज ॥ ३ ॥

तुम स्वयं भी बड़े चतुर हो ॥ २ ॥ ये अपने शत्रुओंका युद्ध
[illegible] मेरे पक्षकी रक्षा करेंगे और थोड़े ही दिनोंमें कुशलपूर्वक
घर लौट आयेंगे। तुलसीदासजी कहते हैं, इन रघुवंशतिलक
कीर्तिका कपिजन गान करेंगे ॥ ३ ॥

[ ५१ ]

रहे ठगिसे नृपति सुनि मुनिवरके वयन।
कहि न सकत काहू राम प्रेमबस, पुलक गात, भरे नीर नयन।
गुरु वसिष्ठ समुझाय कह्यो तप हिय हरषाने, जाने सेष-सयन
[illegible] पानि, पाँय परि भूसुर उर चले उमगि चयन।
तुलसी प्रभु जाहत पाहत चित, सोहत मोहत कोटि मयन।
[illegible] दिनमनि गवन कियो उतर [illegible]

[illegible]

राग सारंग

[ ५२ ]

ऋषि संग हरषि चले दोउ भाई।
पितु-पद बंदि सीस लियो आयसु, सुनि सिष आसिष पाई ॥ १ ॥
नील पीत पाथोज बरन बपु, बय किसोर बनि आई।
सर धनु पानि, पीत पट कटितट, बसे निषंग बनाई ॥ २ ॥
बलित कंठ मनि-माल, कलेवर चंदन गौरि सुहाई।
सुंदर बदन, सरोरुह-लोचन, मुखछबि बरनि न जाई ॥ ३ ॥
पल्लव, पंस, सुमन सिर सोहत क्यों कहौं बेष-सुनाई ?
मनु मूरति धरि उभय भाग भइ त्रिभुवन सुंदरताई ॥ ४ ॥
पैठत सरनि, सिलनि चढ़ि बिनवत खग-मृग-बन-रुचिराई।
सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि पुनि लेत बुलाई ॥ ५ ॥
एक तीर तकि हती ताड़का, बिद्या बिप्र पढ़ाई।
दल्यो जग्य जीति रजनीचर, भइ जग-बिदित बड़ाई ॥ ६ ॥
चरन-कमल-रज-परस अहल्या निज पति-लोक पठाई।
तुलसिदास प्रभुके बूझे मुनि सुरसरि कथा सुनाई ॥ ७ ॥

ऋषिवरके साथ दोनों भाई प्रसन्न होकर चले। पिताजीके चरणोंकी वन्दना कर उनकी आज्ञाको शिरोधार्य किया तथा उनकी शिक्षा सुन आशीर्वाद लिया ॥ १ ॥ दोनों भाइयोंके शरीर नीले और पीले कमलोंके रंगके हैं तथा किशोर अवस्था है। उनके हाथोंमें धनुष-बाण तथा कमरमें पीताम्बर एवं तरकस शोभायमान है ॥ २ ॥ मनोहर कण्ठमें मणियोंकी माला है, शरीरमें चन्दनकी खौर शोभायमान है तथा उनके मनोहर शरीर, कमल-जैसे नयन एवं मुखकी छविका वर्णन नहीं किया जाता ॥ ३ ॥ सिरपर नवीन पत्ते, पंख और पुष्प

शोभायमान हैं। उनके वेषकी सुन्दरता किस प्रकार वर्णन करूँ, मानो त्रिभुवनकी सुन्दरता ही मूर्तिमती होकर दो भागोंमें बँट गई है ॥ ४ ॥ दोनों भाई सरोवरोंमें घुसने तथा शिलाओंपर चढ़कर पक्षी मृग और वनकी सुन्दरता निहारते हैं। तब मुनिवर भययुक्त और प्रेमपुलकित हो उन्हें आदरपूर्वक बारंबार बुला लेते हैं ॥ ५ ॥ विश्वामित्रजीने उन्हें बाणविधि सिखायी। प्रभुने ताड़काको निशाना बनाकर एक ही तीरसे मार डाला। फिर भगवान्‌ने राक्षसोंको जीतकर यज्ञकी रक्षा की, इससे संसारमें उनकी प्रशंसा फैल गयी ॥ ६ ॥ तदनन्तर रघुनाथजीने अपने चरणकमलसे स्पर्श करके ही अहल्याको अपने पतिलोकमें पहुँचा दिया। तुलसीदासजी कहते हैं, इसी समय प्रभुके पूछनेपर मुनिने गङ्गाजीकी कथा सुनायी ॥ ७ ॥

राग नट

[ ५३ ]

दोउ राजसुवन राजत मुनिके संग।
नखसिख लोने, लोने बदन, लोने लोयन, दामिनि-बारिद-बरबरन अंग ॥ १ ॥
सिरनि सिखा सुहाइ, उपबीत पीत पट, धनु-सर कर, कसे कटिनिखंग।
मानो मख-रुज निसिचर हरिबेको सुत पावकके साथ पठये पतंग ॥ २ ॥
करत छाँह घन, बरषैं सुमन सुर, छबि बरनत अतुलित अनंग।
तुलसी प्रभु बिलोकि मग-लोग, खग-मृग प्रेममगन रँगे रूप-रंग ॥ ३ ॥

मुनिके संग दोनों राजकुमार शोभायमान हैं। वे नखसे सिखतक सुन्दर हैं, उनके मुख और नयन भी अत्यन्त मनोहर हैं तथा शरीर बिजली और मेघके समान अति सुन्दर गौर एवं श्यामवर्ण हैं ॥ १ ॥

उनके मस्तकोंपर चोटी शोभायमान है, गलेमें यज्ञोपवीत है, अङ्गमें पीताम्बर सुशोभित है, हाथमें धनुष-बाण हैं तथा कमरमें तरकस कसा हुआ है, मानो यज्ञके रोगरूप राक्षसोंका नाश करनेके लिये सूर्यदेवने अग्निके साथ अपने पुत्र दोनों अश्विनीकुमारोंको भेजा हो ॥ २ ॥ बादल छाया कर रहे हैं, देवतालोग फूल बरसाते हैं तथा उनकी छविको कामदेवसे भी अतुलित बतलाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, प्रभुको देखकर मार्गके मनुष्य, पक्षी और मृग भगवान्‌के रूपरंगमें रँगकर प्रेममें मग्न हो रहे हैं ॥ ३ ॥

राग कल्याण

४

मुनिके संग बिराजत बीर।
काकपच्छ धर, कर कोदंड-सर सुभग
पीतपट कटि तूनीर ॥ १ ॥
बदन इंदु अंभोरुह लोचन, स्याम गौर
सोभा-सदन सरीर।
पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छबि, उर न
समाति प्रेमकी भीर।
खेलत, चलत करत मग कौतुक [illegible]
[illegible]
तोरत लता सुमन [illegible]
[illegible]
बैठत बिमल सिलनि [illegible]
[illegible]
देखत नटत [illegible]
[illegible]

शोभायमान हैं। उनके वेषकी सुन्दरता किस प्रकार वर्णन
मानो त्रिभुवनकी सुन्दरता ही मूर्तिमती होकर दो मार्गोंमें
है ॥ ४ ॥ दोनों भाई सरोवरोंमें घुसने तथा शिलाओंपर
मृग और वनकी सुन्दरता निहारते हैं। तब मुनिवर भयमुक्त
प्रेमपुलकित हो उन्हें आदरपूर्वक बारंबार बुला लेते हैं ॥ ५
विश्वामित्रजीने उन्हें बाणविधि सिखायी। प्रभुने ताड़काको
बनाकर एक ही तीरसे मार डाला। फिर भगवान्‌ने यज्ञमें
जीतकर यज्ञकी रक्षा की, इससे संसारमें उनकी प्रशंसा फैल गयी
॥ ६ ॥ तदनन्तर रघुनाथजीने अपने चरणकमलसे स्पर्श करके ही
अहल्याको अपने पतिलोकमें पहुँचा दिया। तुलसीदासजी कहते हैं,
इसी समय प्रभुके पूछनेपर मुनिने गङ्गाजीकी कथा सुनायी ॥ ७ ॥

राग नट

५३ ]

दोउ राजकुअर राजत मुनिके संग।
नवसिख सोने, सोने बदन, सोने लोचन, दामिनि-बारिद-बरबरन
अंग ॥ १ ॥
सिरनि सिखा सुहाइ, उपबीत पीत पट, धनु-सर कर, कटि
कटिनिषंग।
मानो मख-रच्छ निसिचर हरिबेको सुत पावकके साथ पठये पतंग॥
बरन छोह घन, बरषें सुमन सुर, छवि बरनत अतुलित अनंग।
तुलसी प्रभु बिलोकि मग-लोग, मग-मृग प्रेममगन रँग रूप-रंग॥ २

मुनिके संग दोनों राजकुमार शोभायमान हैं। वे नखसे सिखतक सुन्दर हैं, उनके मुख और नयन भी अत्यन्त मनोहर हैं तथा शरीरकी छटा बिजली और मेघके समान अति सुन्दर गौर एवं श्यामवर्ण है ॥ १

[ ५९ ]

भूरिभाग-भाजनु भई।
रूपरासि अवलोकि बंधु दोउ प्रेम-सुरंग रई॥१॥
कहा कहैं, केहि भाँति सराहैं, नहि करतूति नई।
बिनु कारन करुनाकर रघुबर केहि केहि गति न दई?॥२॥
करि बहु बिनय, राखि उर मूरति मंगल-मोदमई।
तुलसी है बिसोक पति-लोकहि प्रभुगुन गनत गई॥३॥

आज अहल्या परम सौभाग्यशालिनी हुई है। वह रूपकी राशि दोनों भाइयोंको देखकर प्रेमके रंगमें रँग गयी है॥१॥ कहिये, कवि किस प्रकार वर्णन करे, किस प्रकार उनकी सराहना करे? उनकी यह करतूत कुछ नयी भी नहीं है। बिना कारण ही कृपा करनेवाले रघुनाथजीने भला किस-किसको शुभ गति नहीं दी?॥२॥ तुलसीदासजी कहते हैं, इसी प्रकार बहुत-सी विनय कर और प्रभुकी मङ्गल तथा आनन्दमयी मूर्तिको हृदयमें धारण कर शोकहीन हो वह प्रभुका गुणगान करती पतिलोकको चली गयी॥३॥

राग कान्हरा

[ ६० ]

कौसिकके मखके रखवारे।
नाम राम अरु लषन ललित अति, दसरथ-राज-दुलारे॥१॥
मेचक पीन कमल कोमल कल काकपच्छ-धर बारे।
सोभा सकल सकेलि मदन-बिधि सुकर सरोज सँवारे॥२॥
सहस समूह सुबाहु सरिस खल समर सूर भट भारे।
केलि-तून-धनु-बान-पानि रन निदरि निसाचर मारे॥३॥

[ महाराज जनक पूछते हैं—] ये कौन हैं और कहाँसे आये हैं ? ये नीले और पीले कमलके समान श्याम एवं गौर वर्ण, अत्यन्त मनमोहन और स्वभावसे ही शोभायमान हैं ॥ १ ॥ ये बालक कोई मुनिपुत्र हैं या राजकुमार अथवा परब्रह्म और जीव ( हिरण्यगर्भ ) ही जगत्में उत्पन्न हो गये हैं। ये दोनों लालन स्वप्नसमुद्रके रत्न अथवा शुचिरूप रमणीके सुललित लोचन तो नहीं हैं ॥ २ ॥ अथवा ये दोनों अश्विनीकुमार, कामदेव और ऋतुराज वसन्त अथवा श्रीविष्णु और महादेव ही मनुष्यका भेष धरकर आ गये हैं ? अथवा आपने अपने सुकृतरूप कल्पतरुके सुन्दर फल ही पा लिये हैं ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर जनकजी स्नेहवश विदेह हो गये। वे अपने शरीरकी सुधि भूल गये [illegible] हृदयमें आनन्द नहीं [illegible] ॥ जनकजीके मृदुल [illegible] जीको बड़े ही प्रिय [illegible] न हृदयमें आनन्द [illegible]

कौसिक कृपालहूको पुलकित तनु भो
उमगत अनुराग सभाके सराहे भाग
देखि दसा जनकको कहिबेको मनु भो ॥
प्रीतिके न पातकी दियहू साप पाप बड़ो
मख मिस मेरो तब अवध गवनु भो ।
प्रानहूते प्यारे सुत माँग दिये दसरथ
सत्यसिंधु सोच सहो सूनो सो भवनु भो ॥

और प्रणरूप ] दोनों परोंकी सँभाल करते हैं ॥ २ ॥ इसी समय श्रीविश्वामित्रजी दोनों भाइयोंको साथ ले आये और उनके गुणगण कह सुनाये । तुलसीदास कहते हैं—सूर्यकुलके सूर्य श्रीरामचन्द्रको आया देख महाराज जनकका चित्त स्नेहकी स्वाभाविक वायुके झकोरेसे पीपलके पत्तेके समान चञ्चल हो गया ॥ ३ ॥

राग केदारा

[ ७० ]

रंग-भूमि भोरे ही जाइकै ।
राम-लषन लखि लोग लूटिहैं लोचन-लाभ अघाइकै ॥ १ ॥
भूप-भवन, घर घर, पुर बाहर, इहै चरचा रही छाइकै ।
मगन मनोरथ-मोद नारि-नर, प्रेम-बिबस उठै गाइकै ॥ २ ॥
सोचत बिधि-गति समुझि, परसपर कहत बचन बिलखाइकै ।
कुँवर किसोर, कठोर सरासन, असमंजस भयो आइकै ॥ ३ ॥
सुकृत सँभारि, मनाइ पितर-सुर सीस ईसपद नाइकै ।
रघुबर-कर धनु-भंग चहत सब अपनो सो हितु चितु लाइकै ॥ ४ ॥
लेत फिरत कनसुई सगुन सुभ, बूझत गनक बोलाइकै ।
सुनि अनुकूल मुदित मन मानहु धरत धीरजहि धाइकै ॥ ५ ॥
कौसिक कथा एक एकनिसा कहत प्रभाउ जनाइकै ।
सीय राम-सजोग जानियत रच्यो बिरंचि बनाइकै ॥ ६ ॥
एक सराहि सुबाहु मथन बर बाहु उछाह बढ़ाइकै ।
सानुज राज-समाज बिराजहि राम पिनाक चढ़ाइकै ॥ ७ ॥
बड़ो सभा बड़ो लाभ बड़ो जस, बड़ी बड़ाई पाइकै ।
को साहिहै, और को लायक रघुनायकहि बिहाइकै ? ॥ ८ ॥
गवनिहै गवहि गवाइ गरब गृह नृपकुल बलहि लजाइकै ।
भलभाँति साहब तुलसीके चलिहै ब्याहि बजाइकै ॥ ९ ॥

भाईसों कहत बात, कौसिकहि सकुचात,
बोल घन घोर-से बोलत घोर घोर हैं।
सनमुख सबहि, बिलोकत सबहि नीके,
कृपासों हेरत हँसि तुलसीकी ओर हैं॥

'रंगभूमिमें दशरथजीके पुत्र पधारे हैं'—यह सुनकर नगरके स्त्री-पुरुष सभी तमाशा देखनेके लिये चल पड़े, बालक और वृद्ध तक अधे और पङ्गु भी [ अपनेको ले चलनेके लिये ] निहोरा कर रहे हैं॥ १॥ दोनों भाई नीले और पीले कमल, सुवर्ण एवं मरकतमणि तथा मेघ और बिजलीके-से वर्णवाले और रूपके सारसरूप ही हैं। वे स्वभावसे ही सुन्दर हैं, उनके राम और लक्ष्मण—ये मनोहर नाम हैं तथा जैसे सुने गये थे वैसे ही राजकुमारोंमें सिरमौर हैं॥ २॥ उनके चरण कमलके समान हैं, जङ्घा, जानु और कटिप्रदेश भी सुन्दर हैं, तथा कंधे विशाल और भुजाएँ बड़ी बलशालिनी हैं। अति सुन्दर साँवले वर्ण हैं तथा उनके करकमलोंमें अति मनोहर और सुन्दर धनुष-बाण शोभित हैं॥ ३॥ उनके कानोंमें सुन्दर कर्णफूल, गलेमें सुन्दर यज्ञोपवीत तथा शरीरमें अच्छे-अच्छे छोटे पीताम्बर सुशोभित हैं। उनके नयन कमलके तथा मुख चन्द्रमा समान हैं, सिरपर चौकनी टोपियाँ हैं तथा नखसे लेकर शिखातक प्रत्येक अङ्गमें ठौर-ठौरपर ठाँसी है। अर्थात् प्रत्येक अङ्ग चित्त हर लेनेवाला है॥ ४॥ मानो श्रेष्ठ सरोवरके समान हैं तथा वे पवित्र हुए लोग कमल पर चकवा-चकवीतुल्य हैं। वे सूर्यदेवको उदित हुआ देख मनमें परम आनन्दित हो रहे हैं तथा अपनी और देख सकनेवाले राजाओंके चित्त, जिनमेंसे कुछ उन्हें

कै ए सदा बसहु इन्ह नयननिहि, कै ए नयन जाहु जित ए, री ॥२॥
कोउ समुझाइ कहै किन भूपहि, बड़े भाग आए इत ए, री।
कुलिस-कठोर कहाँ संकर-धनु, मृदुमूरति किसोर कित ए, री ॥३॥
बिरचत इन्हहिं बिरंचि भुवन सब सुंदरता खोजत रितए, री।
तुलसिदास ते धन्य जनम जन, मन-क्रम-बच जिन्हके हित ए, री ॥४॥

'अरी सखि! जबसे राम-लक्ष्मणको देखा है तबसे जनकपुरके नर-नारी एकटक रह गये हैं, उन्हें पलक मारनेमें मानो कई कल्प बीत जाते हैं ॥ १ ॥ वे सब प्रेमके वशीभूत हो महादेवजीसे यही माँगते हैं कि नित्य इन्हें ही देखते रहें, या तो सर्वदा ये ही इन नेत्रोंमें बसे रहें या जिधर वे जायँ उधर ही ये नेत्र भी चले जायँ। २॥ भला कोई व्यक्ति राजाको समझाकर ऐसा क्यों नहीं कहता कि ये बड़े भाग्यसे इधर आये हैं, अतः प्रण त्यागकर इन्हें ही सीताजी विवाह दें। भला कहाँ तो वज्रसे भी कठोर श्रीमहादेवजीका धनुष और कहाँ ये अति मृदुल किशोर मूर्ति। ३। इन्हें रचते समय विधाताने सुन्दरताकी खोज करते करते सारे भवन खोज कर दिये थे। तुलसीदास कहते हैं, जिन्हें मन, वचन और कर्मसे ये प्रिय हैं उन लोगोंके जन्म धन्य हैं। ४

७८

सुनु, सखि, भूपति भलोई कियो, री।
जेहि प्रसाद अवधेस-कुँवर दोउ नगर-लोग अवलोकि जियो, री ॥१॥
मानि प्रतीति कहै मेरे तें कत सँदेह-बस करति हियो, री।
तौलौं है यह संभु-सरासन, श्रीरघुबर जौलौं न लियो, री ॥२॥
जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी, औ रामहि ऐसो रूप दियो, री।
तुलसिदास तेहि चतुर बिधाता निजकर यह सजोग सियो, री ॥३॥

महाराज जनकको श्रीमहादेवजी अनुकूल हैं। वे नीलकण्ठ करुणासागर शिवजी दीनबन्धु और निरन्तर दान करनेवाले हैं ॥१॥ जो सब बातोंको हृदयमें जानकर पहलेहीसे जनकजीको धनुष सौंप गये थे उन्हीं भगवान् त्रिनयनने इन राजकुमारोंको लाकर इस समय हम सबको नेत्रोंका फल सुलभ कर दिया है ॥ २ ॥ सुना जाता है, राम भगवान् शङ्करको प्रिय हैं और जानकी पार्वतीजीको भाती हैं। इस समय वे [ राम-जानकीकी ] प्रीति-प्रतीति और [ राजा जनककी ] टेक एवं प्रणकी परीक्षा कर रहे हैं, इसीलिये कार्यके ठाट ठटकर उसमें विलम्ब कर रहे हैं ॥ ३ ॥ इन बालकोंको बिना पहचाने केवल देखनेसे ही जनकजी स्नेहवश हो गये हैं [ इससे जान पड़ता है कि इनके साथ उनका सम्बन्ध अवश्य होनेवाला है, ] मैं तो अपनी बुद्धिसे अनुमान करके कहती हूँ कि होनहार वृक्षोंके पत्ते हरे होते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि इन बालकोंका स्वभाव संकोची है, तो भी इनके सामने अन्य नृपतिगण [illegible] समान तेजहीन दिखायी पड़ते हैं और [illegible] है तथा इनका तेज और [illegible] ॥ ५ ॥ यद्यपि अभी इनकी किशोरावस्था [illegible] मेरुमें रखकर उनका [illegible] नयन राम निश्चय ही इस महादेवजीके [illegible] इनके इस सकल सुमङ्गलमयी [illegible] तुलसीदासजी [illegible] करेंगे वे भी बड़े ही भाग्यवान् हैं ॥ ७ ॥

राग केदारा

[ ८१ ]

रामहि नीके कै निरखि, सुनैनी !
मनसहु अगम समुझि, यह अवसरु कत सकुचति, पिकबैनी ॥१॥
बड़े भाग मख-भूमि प्रगट भई सीय सुमंगल-ऐनी।
जा कारन लोचन-गोचर भइ मूरति सब सुखदैनी ॥२॥
कुलगुर-तियके मधुर बचन सुनि जनक-जुवति मति-पैनी।
तुलसी सिथिल देह-सुधि-बुधि करि सहज सनेह-बिबैनी ॥३॥

[ शतानन्दजीकी स्त्री जानकीजीकी मातासे कहती हैं—] हे सुनयनी! तू रामचन्द्रजीको अच्छी तरह देख ले। अरी पिकभाषिणी! इन्हें तू मनसे भी अगम समझ। इस अवसरपर तू सकुचाती क्यों है? ॥ १ ॥ जिसके कारण यह सब प्रकारके सुख देनेवाली मधुर मूर्ति हमारे नेत्रोंका विषय हुई है वह सब प्रकारके सुमङ्गलोंकी आश्रयभूता सीता हमारे परम सौभाग्यसे ही यज्ञभूमिमें प्रकट हुई है' ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं—अपने कुलगुरुकी स्त्रीके ये मधुर वचन सुनकर कुशाग्रबुद्धि जनकप्रिया शरीरकी सुध-बुध भूलकर भगवान्‌की ओर स्वाभाविक स्नेहसे देखने लगीं ॥ ३ ॥

[ ८२ ]

मिल्यो बर सुंदर सुंदरि सीतहि लायकु,
साँवरो सुभग, सोभाहूँको परम सिंगारु।
मनहूको मन मोहै, उपमाको को है?
मोहै सुखमासागर संग अनुज राजकुमारु ॥ १ ॥
ललित सकल अंग, तनु धरे कै अनंग,
नैननिको फल कैधौं, सियको सुकृत-सारु।

सरद-सुधा-सदन-छबिहि निंदै बदन,
अरुन आयत नवनलिन-लोचन चारु ॥ २ ॥
जनक-मनकी रीति जानि बिरहित प्रीति,
ऐसी औ मूरति देखे रह्यो पहिलो बिचारु ।
तुलसी नृपहि ऐसो कहि न बुझावै कोउ,
'पन औ कुँवर दोऊ प्रेमकी तुला धौं तारु' ॥ ३ ॥

'अरी सखी ! शोभाका भी परम शृंगाररूप यह अति सुन्दर साँवला वर तो सीताहीके लायक है । यह तो सुन्दरी सीताको ही मिलना चाहिये । यह मनका भी मन मोह लेते हैं । इनकी उपमा के योग्य और कौन हो सकता है । इनके साथ इनका अनुज यह सुखसागर राजकुमार सुशोभित है । १ ॥ इनके सब अङ्ग अति सुन्दर हैं । यह [illegible] सुकृतोंका [illegible] सुधाकरकी छबिको निन्दा [illegible] नयन नवीन कमलदलके समान [illegible] मनोहिनी [illegible] [illegible] है [illegible] कहकर [illegible] प्रेमकी [illegible]

३

देखि देखि री ! दोउ राजसुवन
गौर स्याम सलोने लोने, लोने लोयनान
जिन्हकी सोभा तें सोहै सकल भुव

आज राजा लोग अपने-अपने साज और अपने-अपने सुन्दर वेष बनाकर रंगभूमिमें अपने-अपने स्थानोंपर जाकर बैठ गये हैं ॥ १ ॥ इसी समय महाराज जनकने, जिनके अति सुन्दर राम और लक्ष्मण नाम हैं उन महामनोहर बालकोंको विश्वामित्रजीके सहित बुला भेजा। उनके दर्शनोंकी लालसासे पुरवासीलोग भले भावसे प्रसन्नवदन होकर अपने-अपने घरोंसे निकल-निकलकर दौड़ पड़े ॥ २ ॥ तब जनकजीने अपने छोटे भाई कुशध्वजके सहित आनन्दित हो आगे आकर उनका स्वागत किया तथा आदरपूर्वक धनुर्यज्ञकी समस्त रुचिर रचना दिखाकर उन्हें दिव्य आसन दिये, जिनपर सब प्रकारका सुपास और सावकाश था तथा अलग-अलग अच्छे-अच्छे बिछौने बिछे हुए थे ॥ ३ ॥ [दर्शकगण कहते हैं—] 'अहा! दोनों ओर राजकुमार हैं और बीचमें मुनिराज विश्वामित्रजी विराजमान हैं। यह इन्हें देखनेका बड़ा अच्छा अवसर है, इसलिये और सब देखना छोड़कर इन्हींका दर्शन करो। ये दोनों सुन्दर राजकुमार ऐसे जान पड़ते हैं मानो उदयाचलपर प्रातःकालीन सूर्य अपना सहस्र किरणोंको छिपाकर उदित हुआ है ॥ ४ ॥ जनकपुरमें बड़ा कौतुक तथा निशान और गानेका कोलाहल हो रहा है तथा आकाशमें देवताओंके विमान छाये हुए हैं, जिनसे फूलोंकी वर्षा हो रही है। मित्र शत्रु [illegible] ये सब इन बालकोंको देखकर अपना जन्म फल पाकर प्रेम और आनन्दमें मग्न हो रहे हैं ॥ ५ ॥ फिर महाराज जनककी आज्ञा पा मन्त्रिवर्ग और सहेलियाँ दौड़ीं। तथा शतानन्दजी सीताजीको पालकीपर चढ़ाकर ले आये। श्रीजानकीजीके सौन्दर्यरूपी दीपकको निहारकर सब नर-नारी नेत्रोंके

निमेष भूलकर मृग और मृगियोंके समान चकित-से रह गये ॥ ६ ॥ इसी समय बन्दीजन [ धनुष न टूटनेसे ] हानि, [ धनुर्भङ्गसे सीताजी-की प्राप्तिरूप ] लाभ, [ बहुत बल करनेपर भी धनुर्भङ्ग न कर सकनेके कारण राजाओंको हुआ ] अनख, [ जो धनुष तोड़ेगा उसे सीताजी मिलेंगी—ऐसा कहकर ] उत्साह तथा [ रावण-बाणासुरादि विश्वविजयी योद्धाओंके भी दाँत खट्टे करनेवाले धनुषको जो तोड़ेगा उसके ] बाहुबलका बखान करके प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करते हुए विरुदावली कहने लगे और बोले, 'इस समय महाराज जनककी दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर द्वीप-द्वीपान्तरके राजा [illegible] हैं, सो उसे पूरी करें; अब पुरुषार्थका समय [illegible] ॥ [illegible] सुनकर राजाओंमें परस्पर आनाकानी, [illegible] हँसना तथा कानाफूसी होने [illegible] जनक बिलखकर कहने [illegible] जाइये और [illegible] में हो चुका [illegible] कीजिये ॥ [illegible] ॥ [illegible] तुलसीदासजी कहते हैं [illegible] रामचन्द्रजीका [illegible] कुछ मधुर और [illegible]

भूपति बिदेह कही नाकिये जो भई है
बड़े ही समाज आजु राजनिका [illegible]
हाँकि आँक एक ही पिनाक [illegible]

रहै रघुनाथकी निकाई नीकी नीके नाथ,
हाथ सो तिहारे करतूति जाकी नई है'...
कहि 'साधु, साधु' गाधि-सुवन सराहे राउ,
'महाराज ! जानि जिय ठीक भली दई है'।
हरषे लखन, हरखाने बिलखाने लोग,
तुलसी मुदित जाको राजा राम जई है॥

जनकजी सोचते हैं—'बड़ा बुरा पेंच आ पड़ा है।' [illegible] श्रीविश्वामित्रजीसे हाथ जोड़कर निहोरा करते हुए कहने लगे, 'भगवन् ! आपने जो रामको आज्ञा दी है उसके सम्बन्धमें मुझे सन्देह हो रहा है। बाणासुर, राक्षसराज रावण, सातों द्वीपके नृपतिगण और लोकपालोंके देखते ही इस धनुषने मानो पृथ्वीको पकड़ लिया है। जिस प्रकार ज्योतिर्लिङ्गकी कथा सुनकर [उसका अन्त पानेके लिये स्वर्ग और पातालमें जानेपर भी] ब्रह्मा और विष्णु अन्तमें उसका पार न पाकर लौट आये थे वही हाल इस धनुषका भी हुआ है॥ १-२॥ आप ही विचारिये और इन [illegible] सभाकी गति देखिये। ऐसा जान पड़ता है मानो हेतुवाद (तर्कवाद) ने वेदकी मर्यादा नष्ट कर दी हो। इन बालकोंका तो जैसा [illegible] प्रसन्न है वैसी ही शरीरकी शोभा बढ़ी हुई है तथा इनके मुखोंकी सुन्दरता भी अति सुखदायिनी जान पड़ती है॥ ३॥ इनकी [illegible] प्रसन्नता है वह या तो आपके भरोसेका बल है, या [illegible] किये हुए देवता हैं, या इनके कुल (सूर्यवंश) का प्रभाव है, [illegible] केवल बालकपन है। अथवा विधाताने मेरी कन्या सीता [illegible] विश्वव्यापिनी कीर्ति और विजयको बटोरकर कहीं इन्हींके [illegible]

भूमि-भोग करत अनुभवत जोग-सुख,
मुनि-मन-अगम अलख गति जान को ?
गुर-हर-पद-नेहु, गेह बसि भौ बिदेह,
अगुन-सगुन-प्रभु-भजन-सयान को ? ॥ २ ॥
कहनि रहनि एक, बिरति बिबेक नीति,
बेद-बुध-संमत पथीन निरबानको ?
गाँठि बिनु गुनकी कठिन जड़-चेतनकी,
छोरी अनायास, साधु सोधक अपान को ॥ ३ ॥
सुनि रघुबीरकी बचन-रचनाकी रीति,
भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहानको।
मिट्यो महामोह जीको, छूट्यो पोच सोच सीको,
जान्यो अवतार भयो पुरुष पुरानको ॥ ४ ॥
सभा, नृप, गुर, नर-नारि पुर, नभ सुर,
सब चितवत मुख करुनानिधानको।
एकै एक कहत प्रगट एक प्रेम-बस,
तुलसीस तोरिये सरासन इसानको ॥ ५ ॥

[भगवान् राम बोले — [illegible] समान और कौन राजा है, जिनकी [illegible] सराहना कर रहे हैं ? अहा ! [illegible] विरागी दूसरा कौन भाग्यवान् होगा [illegible] हुए योगसुखका भी अनुभव करते हैं [illegible] मुनियोंके भी मनको अगम है, [illegible] श्रीगुरु और भगवान् शङ्करके [illegible] भी विदेहभावको प्राप्त हो गये हैं, [illegible]

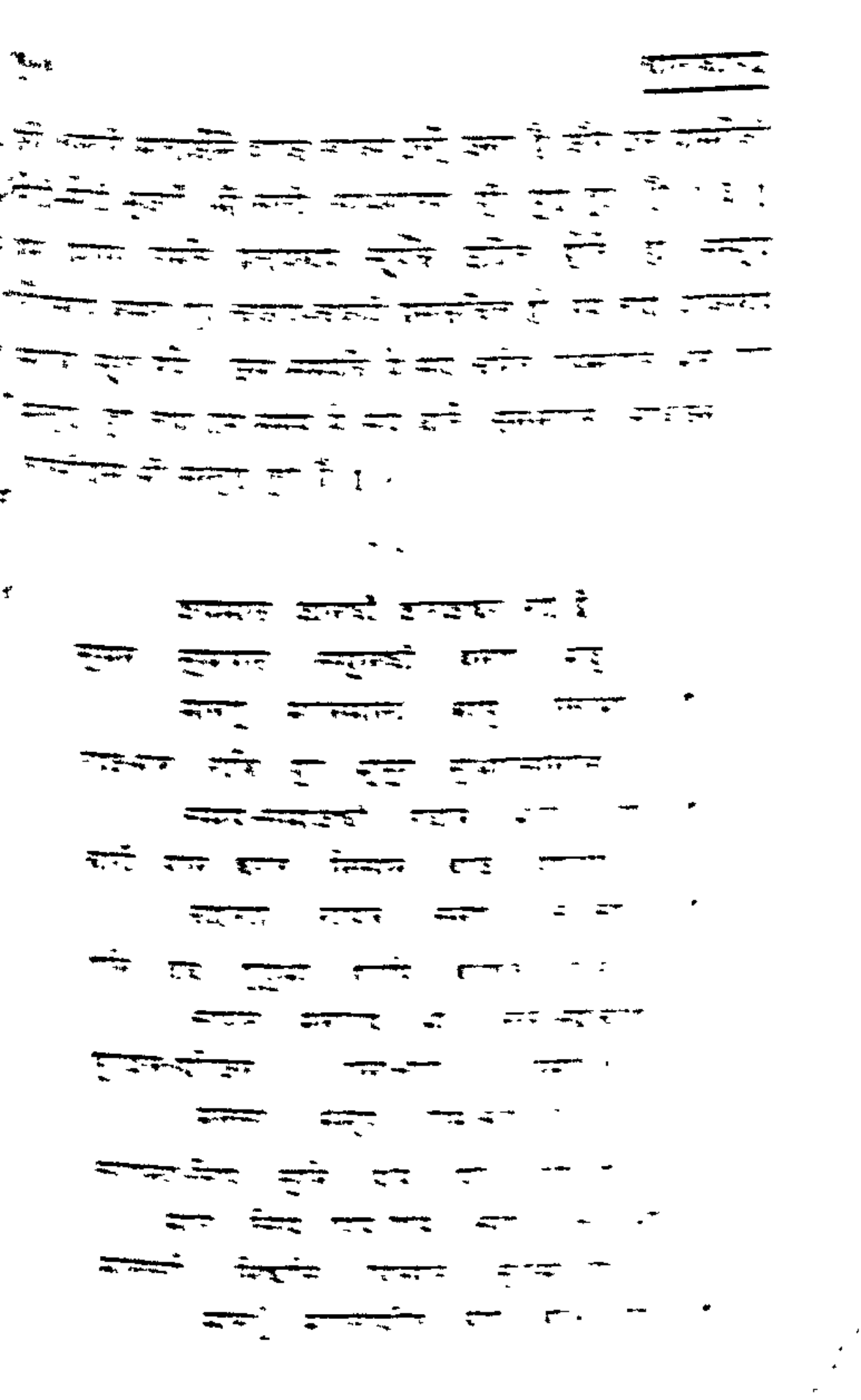

[illegible] हो गया है। इस समय [illegible] हो गयी है॥ २॥ [illegible] ॥ ३॥ [illegible] हुई है। [illegible] है॥ ४॥

## विवाहकी तैयारी

राग सोरठ

[ ९९ ]

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे।
भूख, पियास, सीत, स्रम सकुचनि क्यों कौसिकहि कहहिंगे॥ १॥
को मोर ही उबटि अन्हवैहै, काढ़ि कलेऊ दैहै।
को भूषन पहिराइ, निछावरि करि लोचन-सुख लैहै॥ २॥
नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित पितु-परिजन-महतारी।
ते पठए ऋषि साथ निसाचर मारन मख रखवारी॥ ३॥
सुंदर सुठि सुकुमार सुकोमल, काकपच्छ-धर दोऊ।
तुलसी निरखि हरषि उर लैहौं बिधि ह्वैहै दिन सोऊ॥ ४॥

[illegible] कौसल्याजी चिन्ता [illegible] किस प्रकार मार्गमें निर्वाह करेंगे। वे [illegible] शीत और श्रम आदिके विषयमें [illegible] उन्हें प्रातःकाल होते ही उबटन [illegible]

कलेवा निकालकर देगा और कौन आभूषण पहनाकर [illegible] करते हुए नेत्रोंका आनन्द लूटेगा ? ॥ २ ॥ जिन्हें पिता, [illegible] और माताएँ सर्वदा नेत्रोंकी पलकोंके समान सँभाल रखती थीं [illegible] राजाने यज्ञकी रखवाली और निशाचरोंका संहार करनेके [illegible] विश्वामित्रजीके साथ भेज दिया ॥ ३ ॥ हे विधाता ! क्या कभी [illegible] दिन आवेगा जब मैं इन अति सुन्दर, सलोने, सुकुमार सुकोमल और [illegible] दोनों बालकोंको देखकर हर्षित हो [illegible]

[illegible]

[illegible]

इस प्रकार माता कौसल्या स्नेहसे आतुर और दुःखित होकर कहने लगीं—'अरी सखि ! सुन, संसारमें वीर पुरुषकी माताका जीवन तो वृथा ही है और क्षत्रिय-जातिकी गति भी बड़ी ही विकट है ॥ ३ ॥ जो पुरुष मुझसे यह कहेगा कि 'राम और लक्ष्मण मुनिके यज्ञकी रक्षा कर घर लौट आये हैं' वह स्वभावसे ही मुझे वैसा ही प्रिय लगेगा जैसे चारों पुत्र' ॥ ४ ॥

[ १०१ ]

जबतें लै मुनि संग सिधाए।
राम-लखनके समाचार, सखि ! तबतें कछुअ न पाए ॥ १ ॥
बिनु पानहीं गमन, फल भोजन, भूमि सयन तरुछाहीं।
सर-सरिता जलपान, मिसुनके संग सुसेवक नाहीं ॥ २ ॥
कौसिक परम कृपालु, परमहित, समरथ, सुखद, सुचाली।
बालक सुठि सुकुमार सकोची, समुझि सोच मोहि आली ॥ ३ ॥
बचन सप्रेम सुमित्राके सुनि भय सनेह-बस बानी।
तुलसी आइ भगत तेहि औसर कही सुमंगल बानी ॥ ४ ॥

'अरी सखि ! जबसे मुनीश्वर अपने साथ लेकर गये हैं तबसे मुझे राम-लक्ष्मणका कुछ भी समाचार नहीं मिला। बिना जूतीके चलना, फलाहार करना, वृक्षकी छायामें पृथ्वी पर सोना और नदी एवं तालाबोंका जल पीना—इन बातोंके लिये कोई अच्छा सेवक भी नहीं है ॥ २ ॥ विश्वामित्रजी बड़े ही परमहितकारी, सामर्थ्यवान्, सुखदायक और सदाचारी हैं। ये सुकोमल बालक भी बड़े ही सुकुमार और संकोची हैं—अरी आली ! यह जानकर ही मुझे बड़ा भारी सोच हो रहा

प्रकार माता कौसल्या स्नेहसे आतुर और दुःखित होकर कहने
हैं—अरी सखि ! सुन, संसारमें वीर पुरुषकी माताका जीवन
कूप ही है और क्षत्रिय-जातिकी गति भी बड़ी ही विकट
॥ ३ ॥ जो पुरुष मुझसे यह कहेगा कि 'राम और लक्ष्मण
निके यज्ञकी रक्षा कर घर लौट आये हैं' वह स्वभावसे ही मुझे
त ही प्रिय लगेगा जैसे चारों पुत्र' ॥ ४ ॥

[ १०१ ]

जबतें लै मुनि संग सिधाए।
रामलखनके समाचार, सखि ! तबतें कछुअ न पाए ॥ १ ॥
बिनु पानहीं गमन, फल भोजन, भूमि सयन तरुछाहीं।
सर-सरिता जलपान, सिसुनके संग सुसेवक नाहीं ॥ २ ॥
कौसिक परम कृपालु, परमहित, समरथ, सुखद, सुचाली।
बालक सुठि सुकुमार सकोची, समुझि सोच मोहि आली ॥ ३ ॥
बचन सप्रेम सुमित्राके सुनि सब सनेह-बस रानी।
तुलसी आइ भरत तेहि औसर कही सुमंगल बानी ॥ ४ ॥

'अरी सखि ! जबसे मुनीश्वर अपने साथ लेकर गये हैं तबसे मुझे राम-लक्ष्मणका कुछ भी समाचार नहीं मिला ॥ १ ॥ उन्हें बिना जूतियोंके चलना, फलाहार करना, वृक्षकी छायामें पृथ्वीपर सोना और नदी एवं तालाबोंका जल पीना पड़ेगा। उन बालकोंके साथ कोई अच्छा सेवक भी नहीं है ॥ २ ॥ विश्वामित्रजी तो बड़े कृपालु, परमहितकारी, सामर्थ्यवान्, सुखदायक और सदाचारी हैं परन्तु वे सुकोमल बालक भी बड़े ही सुकुमार और संकोच करनेवाले हैं—अरी आली ! यह जानकर ही मुझे बड़ा सोच हो रहा

है' ॥ ३ ॥ सखियोंके ये प्रेमपूर्ण वचन सुनकर सब रानियाँ [illegible]

हो [illegible]

मंगल [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कौसल्या लिये लाइ हृदय, 'बलि कहौ, कछु है सुधि पाई?' ॥२॥

सतानंद उपरोहित अपने तिरहुति-नाथ पठाए।

खेम कुसल रघुबीर-लषनकी ललित पत्रिका ल्याए ॥३॥

दलि ताड़का, मारि निसिचर, मख राखि, बिप्र-तिय तारी।

दै बिद्या लै गय जनकपुर, हैं गुरु-संग सुखारी ॥४॥

करि पिनाक-पन, सुता-स्वयंबर सजि, नृप-कटक बटोर्‍यो।

राजसभा रघुबर मृनाल ज्यों संभु-सरासन तोर्‍यो ॥५॥

यों कहि सिथिल-सनेह बंधु दोउ, अब अंक भरि लीन्हें।

बार बार मुख चूमि चारु मनि-बसन निछावरि कीन्हें ॥६॥

सुनत सुहावनि चाह अवध घर घर आनंद बधाई।

तुलसिदास रनिवास रहस बस सखी सुमंगल गाई ॥७॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पन पिनाक, पवि मेरु तें गुरुता कठिनाई।
लोकपाल, महिपाल, बान बानइत,
दसानन सके न चाप चढ़ाई ॥ ३ ॥
तेहि समाज रघुराजके मृगराज जगाई।
भंजि सरासन संभुको जग जय,
कल कीरति, तिय तियमनि सिय पाई ॥ ४ ॥
पुर घर घर आनंद महा सुनि चाह सुहाई।
मातु मुदित मंगल सजैं,
कहैं मुनि प्रसाद भये सकल सुमंगल, माई ॥ ५ ॥
गुरु-आयसु मंडप रच्यो, सब साज सजाई।
तुलसिदास दसरथ बरात सजि,
पूजि गनेसहि चले निसान बजाई ॥ ६ ॥

अयोध्यावासी नर-नारी आपसमें कहने लगे—] 'अ
राम-लक्ष्मणका समाचार मिला है, इसीसे अयोध्यामें बधाई बज
है। महाराज जनकने सुन्दर लग्नपत्रिका लिखकर अपने पुरोहि
हाथ भेजा है ॥ १ ॥ महाराज विदेहके रूपमें बढ़ी-चढ़ी
[illegible], उसके स्वयंवरका समाचार सुन देश देशान्तरके नृपति
अपनी-अपनी चतुरङ्गिणी सेनाएँ सजाकर आये थे ॥ २ ॥
स्वयंवरके प्रण महादेवजीका धनुष था जिसकी गुरुता और कठो
[illegible] भी [illegible] था। उस धनुषको लोकपाल, [illegible]
[illegible] बाणासुर [illegible] रावणादि भी
[illegible] ३ ॥ उस राजसमाजमें महाराज जनकने कुछ
[illegible] सिंह को जगा दिया। उन
[illegible] संसारमें विजय, कमनीय कीर्ति

[illegible] सिंगारसार करि [illegible] है लिति [illegible] ।
[illegible] करि, [illegible] मति [illegible] ॥ २ ॥
[illegible] सोहावनो, [illegible] बैठिगए [illegible] ।
[illegible] भये, तुलसीदासप्रभु [illegible] ॥ ३ ॥

[illegible]

[illegible]

१०८

[illegible] सुंदर, [illegible] ।

[illegible]

[illegible] भृगुजीका चरणचिह्न है, अनेकों आभूषणोंसे युक्त लंबी-लंबी भुजाएँ हैं तथा पीताम्बरकी अतिशय शोभा हो रही है ॥ ५ ॥ प्रभुके हृदयमें मुझे अति विचित्र सुवर्णवर्ण यज्ञोपवीत तथा मोतियोंकी माला प्रिय जान पड़ती है: मानो बादल और बिजलीके बीचमें इन्द्रधनुष उदित हो और वहीं बगुलोंकी पंक्ति भी आ गयी हो। [ यहाँ श्याम शरीर मेघ है, पीताम्बर बिजली है, यज्ञोपवीत इन्द्रधनुष है और मोतियोंकी माला बगुलोंकी पंक्ति है ] ॥ ६ ॥ भगवान्‌का मुख चन्द्रमाके समान है, चिबुक और अधर सुन्दर हैं तथा दाँतोंकी सुन्दरताका तो मैं वर्णन ही किस प्रकार करूँ ' मानो साक्षात् वज्र ( हीरे ) ही बिजली और बालसूर्यकी कान्ति लेकर कमलकोशमें बसने लगा हो। [ यहाँ मुख कमलकोश है, [illegible] है तथा अधर और [illegible] ही बालसूर्यकी [illegible] [illegible] बिजली है ] ॥ ७ ॥ उनकी नासिका सुन्दर [illegible] हैं, भृकुटियाँ टेढ़ी हैं तथा कानोंमें अनुपम [illegible] दो कमलोंको हृदयमें [illegible] [ यहाँ दोनों नेत्र कमल हैं और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १० ॥

## अयोध्या-आगमन

राग कान्हरा

[ १०९ ]

भुजनिपर जननी बारि-फेरि डारी ।
क्यों तोर्‍यो कोमल कर-कमलनि संभु-सरासन भारी ? ॥१॥
क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी ?
मुनि-प्रसाद मेरे राम-लषनकी बिधि बड़ि करवर टारी ॥२॥
चरनरेनु लै नयननि लावति, क्यों मुनिबधू उधारी ।
कहौं धौं तात ! क्यों जीति सकल नृप बरी है बिदेहकुमारी ॥३॥
दुसह-रोष-मूरति भृगुपति अति नृपति-निकर-खयकारी ।
क्यों सोर्‍यो सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनुहारी ॥४॥
उमगि उमगि आनंद बिलोकति बधुनसहित सुत चारी ।
तुलसिदास आरती उतारति प्रेम मगन महतारी ॥५॥

[illegible] करती है
और [illegible] महादेवजीका
[illegible] मारीच
[illegible] विश्वामित्र-
[illegible] बड़ा भारी
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

प्रकार तुम्हें शार्ङ्गधनुष सौंप दिया और कैसे तुम्हारी बहुत कुछ अनुनय-विनय की ?' ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं, इस प्रकार प्रेममें मग्न होकर माता कौसल्या आरती उतारती हैं और आनन्दसे उमँग-उमँगकर वधुओंके सहित चारों पुत्रोंको देखती हैं ॥ ५ ॥

[ ११० ]

मुदित-मन आरती करैं माता ।
कनक-बसन-मनि वारि वारि करि पुलक प्रफुल्लित गाता ॥१॥
पालागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत-साता ।
देहिं असीस ते 'बरिस कोटि लगि अचल होउ अहिवाता' ॥२॥
राम-सीय-छबि देखि जुवतिजन करहिं परसपर बाता ।
अब जान्यो, साँचहु सुनहु, सखि ! कोबिद बड़ो बिधाता ॥३॥
मंगल-गान निसान नगर-नभ, आनँद कह्यो न जाता ।
चिरजीवहु अवधेस-सुवन सब तुलसिदास-सुखदाता ॥४॥

माता कौसल्या सुवर्ण, वस्त्र और मणि निछावर कर प्रेमसे पुलकित और प्रफुल्लित हो प्रसन्न मनसे आरती करती हैं ॥ १ ॥ वे दुलहिनोंको अपने ही समान अन्य सात सौ सासुओंके भी पाँवों लगना सिखाती हैं और वे सब आशीर्वाद देती हैं कि 'तुम्हारा सुहाग करोड़ों वर्षतक अचल रहे' ॥ २ ॥ राम और सीताकी छवि देखकर युवतियाँ आपसमें बातें करती हैं कि 'अरी सखि ! सुन, हमने तो अब जाना है कि विधाता बड़ा ही चतुर है' ॥ ३ ॥ नगर और आकाशमें मङ्गलगान हो रहा है और बाजे बज रहे हैं, उस समयका आनन्द कहा नहीं जाता । सब लोग यही आशीर्वाद दे रहे हैं कि ] तुलसीदासको सुख देनेवाले अवधेशके सभी पुत्र चिरजीवी हों ॥ ४ ॥

ॐ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

# गीतावली

## अयोध्याकाण्ड

### राज्याभिषेककी तैयारी

राग सोरठ

१

नृप कर जोरि कह्यो गुर पाहीं।
तुम्हरी कृपा असीस, नाथ! मेरी सबै महस निबाहीं॥ १
राम होहिं जुवराज जियत मेरे, यह लालच मन माहीं।
बहुरि मोहिं जियबे मरिबेकी चित चिंता कछु नाहीं॥ २
महाराज, भलो काज बिचार्यो, बेगि बिलंब न कीजै।
बिधि दाहिनो होइ तो सब मिलि जनम-लाहु लुटि लीजै॥ ३
सुनत नगर आनंद बधावन, कैकेयी बिलखानी।
तुलसीदास देवमायाबस कठिन कुटिलता ठानी॥ ४

[illegible] नाथ
[illegible] कामनाएं पूर्ण
[illegible] जा श्रीर
[illegible] चिन
[illegible] तुम
[illegible] चाहिये,
[illegible] नाथ मिल

[illegible] ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, इस समय [illegible] [ रामराज्याभिषेकसम्बन्धी ] आनन्दमय बधाई सुनकर [illegible] और देवमायाके वशीभूत हो उसने कठिन [illegible] ॥ ४ ॥

## वनके लिये विदाई

राग गौरी

[ २ ]

सुनहु राम मेरे प्रानपियारे ।
[illegible] सत्यवचन श्रुति-सम्मत, जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे ॥ १ ॥
[illegible] सब साधनको फल प्रभु पायो सो तो नाहिं सँभारे
[illegible] धरमसील भयो चाहत, नृपति नारिबस सरबस हारे ॥ २ ॥
[illegible] कौंचमनि देखि मूढ़ ज्यों करतलते चिंतामनि डारे
[illegible] लोचन-चकोर-ससि राघव, सिव-जीवन-धन [illegible] ॥ ३ ॥
[illegible] मायाबस सुखनिधान सुत तुम्हहि [illegible]
[illegible] रघुपति दीनबंधु [illegible] ॥ ४ ॥
[illegible] प्रीति विनीत बचन सुनि प्रभु [illegible]
[illegible] तुलसिदास जौं रहौं मातु-हित [illegible]

[illegible]

हाय ! राजाने स्त्रीके वशीभूत होकर अपना सर्वस्व हार दिया ॥२॥ जैसे मूढ़ पुरुष सुन्दर काचमणि देखकर हाथसे चिन्तामणि गिरा देता है। 'राम मुनीश्वरोंके नेत्ररूप चकोरोंके लिये चन्द्रमा हैं और साक्षात् श्रीशङ्करके प्राणसर्वस्व हैं' राजाने तो इस बातका भी विचार नहीं किया ॥ ३ ॥ हे तात ! यद्यपि स्वामीने माताके वशीभूत होकर ही अपने सुखनिधान पुत्र तुम्हें त्याग दिया है, तथापि हे दीनबन्धु, हे दयामय, हे मेरे लाल रघुनन्दन ! तुम हमें तो मत छोड़ो' ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं, माताके ये अतिशय प्रीति और विनययुक्त वचन सुनकर कोमलहृदय भगवान् राम वहाँसे चल न सके और सोचने लगे, 'यदि मैं माताका प्रिय करनेके लिये यहाँ रह जाऊँ तो देवता, ब्राह्मण और पृथ्वीका भय कौन दूर करेगा' ॥ ५ ॥

३

रहि चलिए सुंदर रघुनायक।
जो सुत तात बचन पालन रत जननिउ तात मानिबे लायक ॥१॥
बड़ बिदित यह बानि तुम्हारी रघुपति सदा संत सुखदायक।
राखहु निज मरजाद निगमकी हौं बलि जाउँ, धरहु धनुसायक ॥२॥
सोक कूप पुर गोरोह भरिहि नृप सुनि सँदेस रघुनाथ सिधायक।
बहु दसन बिधि नाहि हात अब रामचरन बियोग-उपजायक ॥३॥
मातु बचन सुनि स्रवत नयन जल कछु सुभाउ जनु नरतनु-पायक।
[illegible] हाय माहि महि आयक ॥

[illegible]

[illegible] है ॥ १ ॥ तुम्हारा यह स्वभाव तो वेदमें भी विख्यात है कि रघुनाथजी सर्वदा सत्पुरुषोंको सुख देनेवाले हैं। अतः मैं बलिहारी जाऊँ, तुम अपनी वेदोक्त मर्यादाकी रक्षा करो और धनुष-बाण उतारकर रख दो ॥ २ ॥ रामके वनगमनका समाचार पाते ही सारा नगर शोकरूपमें डूब जायगा और महाराज भी प्राण छोड़ देंगे। अरे रामचरणोंसे विछोह करानेवाले विधाता! देख, यह दोष अब तेरे ऊपर आनेवाला है ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, माताके ये वचन सुनकर प्रभु नेत्रोंसे जल बहाने लगे, मानो कुछ तो यह नरदेह पानेका स्वभाव था और कुछ यह विचार भी था कि यदि मैंने देवताओंका काम पूरा न किया तो मुझे पृथ्वीमें आनेका दोष ही लगेगा ॥ ४ ॥

राग सोरठ

राम! हौं कौन जतन घर रहिहौं।
बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौनसों कहिहौं।
इहि आँगन बिहरत मेरे बारे! तुम जो सग सिसु लीन्हे
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत, बहु बिनोद तुम्ह कीन्हे।
जिन्ह श्रवननि कल बचन तिहारे सुनि सुनि हौं अनुरागी
तिन्ह श्रवननि बनगवन सुनति हौं, मोते कौन अभागी ॥ ३ ॥
जुग सम निमिष जाहिं रघुनंदन, बदनकमल बिनु देखे
जौ तनु रहै बरष बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ॥ ४ ॥
तुलसीदास प्रेमबस श्रीहरि देखि बिकल महतारी।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि आवन कह्यो मुरारी ॥ ५ ॥

[ फिर सीताजीको साथ चलनेके लिये हठ करती देख भगवान् रामने कहा—] 'हे प्रिये ! हमारे कहनेसे तुम घर ही रहो। हे गृहस्वामिनी ! तुम सासके चरणोंकी सर्वदा आदरपूर्वक सेवा करो, यह तुम्हारे लिये अत्यन्त भली बात होगी ॥ १ ॥ हे राजकुमारि ! वनका मार्ग बड़ा ही कठिन और कण्टकाकीर्ण है। हे गजगामिनि ! तुम अपने कोमल चरणोंसे उसपर कैसे चल सकोगी ? अगणित दिन और रात्रियोंतक तुम दुःसह वायु, वर्षा, शीत और घाम कैसे सहन कर सकोगी ! ॥ २ ॥ हे विद्युत्कान्तिमयि ! मैं भी पिताजीकी आज्ञाका पालनकर शीघ्र ही लौट आऊँगा।' तुलसीदासजी कहते हैं, प्रभुके ये वियोगसूचक वचन सुनकर सीताजी उन्हें सह न सकीं और मूर्च्छित हो गयीं ॥ ३ ॥

६

कृपानिधान सुजान प्रानपति, संग बिपिन ह्वै आवोगी।
गृहतें कोटि गुनित सुख मारग चलत, साथ सचु पावोगी ॥ १ ॥
थाके चरनकमल चापौंगी, श्रम भए बाउ डोलावोगी।
नयन-चकोरनि मुखमयंक-छबि सादर पान करावोगी ॥ २ ॥
जौं हठि नाथ राखिहौ मोकहँ, तौ संग प्रान पठावोगी।
तुलसिदास प्रभु बिनु जीवत रहि क्यों फिरि बदन दखावोगी ॥ ३ ॥

[ सीताजी कहने लगीं [illegible]
[illegible]
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible]

मुखचन्द्रकी छवि आदरपूर्वक पान कराऊँगी ॥ २ ॥ और हे नाथ! यदि आप हठपूर्वक मुझे यहीं छोड़ जायँगे तो मैं लाचार होकर अपने प्राणोंको ही आपके साथ भेज दूँगी, क्योंकि आपके चले जानेपर फिर प्रभुके बिना जीवित रहकर मैं अपना मुख कैसे दिखलाऊँगी" ॥ ३ ॥

[ ७ ]

कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु ?
बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको, जोपै पिय परिहर्‌यो राजु ॥ १ ॥
बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कंद-मूल-फल अमिय नाजु ।
प्रभुपदकमल बिलोकिहैं छिनछिन, इहितें अधिक कहा सुख-समाजु ।
ही रहौं भवन भोग लालुप है, पति कानन कियो मुनिको साजु ।
तुलसिदास एस बिरह-बचन सुनि कठिन हियो बिहरो न माजु ॥ ३ ॥

[illegible] क्या काम है!
[illegible] ही करोड़ों
[illegible] अति मनोहर
[illegible] अमृतमय अ
[illegible] दर्शन
[illegible] ॥ २ ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

प्राननाथ सुंदर सुजानमनि, दीनबंधु, जग-आरति-दवन।
तुलसिदास प्रभु-पदसरोज तजि रहि हौं कहा करौंगी भवन? ॥२॥

'हे प्राणनाथ! आज आपने ऐसे कठोर वचन किस कारणसे कहे! हे रमण! आप मृदुलचित्त और परम कृपालु हैं; आप सबके मनकी गति जानते हैं ॥ १ ॥ हे प्राणनाथ! हे सुन्दर! हे सुजान-शिरोमणि! हे दीनबन्धु! हे जगत्‌का दुःख दूर करनेवाले! आपके चरणकमलोंको त्यागकर मैं घरमें रहकर क्या करूँगी?' ॥ २ ॥

[ ९ ]

मैं तुम्हसों सतिभाव कही है।
बूझति और भाँति भामिनि कत, कानन कठिन कलेस सही है ॥१॥
जौं चलिहौं तौ चलो चलि कै बन, सुनि सियमन अवलंब लही है।
बूड़त बिरह-बारिनिधि मानहु नाह बचनमिस बाँह गही है ॥ २ ॥
प्राननाथके साथ चलीं उठि, अवध सोकसरि उमगि बही है।
तुलसी सुनी न कबहुँ काहु कहुँ, तनु परिहरि परिछाँहि रही है ॥ ३ ॥

[ भगवान् राम बोले —] 'प्रिये! [illegible] कहा है; तुम इस प्रकार और तरह क्यों [illegible] मुझे ही बहुत क्लेश है ॥ १ ॥ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

मुखचन्द्रकी छवि आदरपूर्वक पान कराऊँगी ॥ २ ॥ और हे नाथ! यदि आप हठपूर्वक मुझे यहीं छोड़ जायँगे तो मैं लाचार होकर अपने प्राणोंको ही आपके साथ भेज दूँगी, क्योंकि आपके चले जानेपर फिर प्रभुके बिना जीवित रहकर मैं अपना मुख कैसे दिखलाऊँगी ?" ॥ ३ ॥

[ ७ ]

कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु ?
बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको, जोपै पिय परिहर्‍यो राजु ॥ १ ॥
बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कंद-मूल-फल अमिय नाजु ।
प्रभुपदकमल बिलोकिहैं छिनछिन, इहितें अधिक कहा सुख-समाजु ?
हौं रहौं भवन भोग-लोलुप ह्वै, पति कानन कियो मुनिको साजु ।
तुलसिदास ऐसे बिरह-बचन सुनि कठिन हियो बिहरो न आजु ॥ ३ ॥

"कहिये, भला आपके बिना इस घरमें मेरा क्या काम है ? जब प्रियतमने राज्य त्याग दिया तब मेरे लिये तो वन ही करोड़ों स्वर्गलोकके समान है ॥ १ ॥ मुझे तो वल्कल ही अति मनोहर और निर्मल [illegible] और कन्द-मूल-फल ही अमृतमय अन्न [illegible] चरणकमलोंका दर्शन [illegible] सुखकी सामग्री होगी ? ॥ २ ॥ [illegible] और पतिदेव वनमें [illegible] वचनोंको सुनकर [illegible] जाता ?" ॥ ३ ॥

प्रिय निठुर बचन कहे कारन कवन ?
जानत हौ सबके मनकी गति, सुदुचित, परम कृपालु, रवन ! ॥ १ ॥

[illegible] पद गहि आयसु माँग्यो, जननि कहत बहुभाँति निहोरे ।
[illegible] गुरु-सेवा सुचि ह्वैहौ तौ जानिहौं, सही सुत मोरे ॥ ३ ॥
[illegible] इहै विचार निरंतर, राम समीप सुकृत नहि थोरे ।
[illegible] सुनि सिय चले चकित-चित, उड्यो मानो विहग
बधिक भए भोरे ॥ ४ ॥

लक्ष्मणजी हाथ जोड़े हुए खड़े हैं। उनके हृदयमें धकधकी लगी हुई है, संकोचवश कुछ कहते नहीं [ बस यही सोचते हैं — ] 'राम ! इस समय तो प्रभु सभीको तृण तोड़कर त्याग रहे हैं [ न जाने, हम सेवकको भी साथ लेंगे या नहीं ? ]' ॥ १ ॥ [illegible] [illegible] ऐसे खड़े रहते हैं इसी तरह [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] परदेस पयादेहि चले सुख सकल तजे तृन तूरि ।
[illegible] बिलंबिय बिटपतर, झारौं हौं चरन-सरोरुह-धूरि ॥ २ ॥
तुलसिदास प्रभु प्रियावचन सुनि नीरजनयन नीर आए पूरि ।
[illegible] कहाँ अबहिं सुनु सुंदरि, रघुपति फिरि चितए हित भूरि ॥ ३ ॥

[illegible] श्रीजानकीजी [illegible] — [illegible] ! [illegible] ॥ १ ॥ [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

चढ़कर उन्हें भुजा उठाकर पुकारते हैं ॥ १ ॥ पृथ्वीपर मृग और वृक्षोंकी डालियोंपर पक्षी प्रभुका रूपलावण्य देख रहे हैं—वे पलक भी नहीं मारते और प्रभुको अपने धनुष-बाणपर करकमल फेरते देखकर भी भय नहीं मानते—प्रेममें मग्न हो रहे हैं ॥ २ ॥ मानो लोग चारों दिशाओंसे देख रहे हैं, मानो चकोर पक्षी चन्द्रमाको घेरे हुए हों। तुलसीदास कहते हैं, जो लोग बटोही रामके चरणोंमें [illegible] हैं वे पृथ्वीपर बड़े ही भाग्यशाली हैं ॥ ३ ॥

१५

[illegible] कुँवर [illegible] मग जात।

सुंदर [illegible] लोचन, मरकत कनकवरन मृदु गात ॥१॥

[illegible] कटि मुनिपट जटा मुकुट बिच नूतन पात।

[illegible] सायक [illegible] सहज मुसुकात ॥२॥

[illegible] सुभग [illegible] बिन भूषन नव-सात।

[illegible] नयन बिकसित मनो प्रात ॥३॥

[illegible] सकुचात।

[illegible] पथिक दोउ भ्रात

[illegible]

[illegible] हैं एक अति सुन्दरी सुकुमारी स्त्री शोभायमान है। उनकी [illegible] देखते ही [illegible] स्त्रियोंके नेत्रकमल प्रातःकालीन कमलोंके [illegible] हैं ॥ ३ ॥ उनके अङ्ग-अङ्गमें अगणित कामदेवोंकी [illegible] हैं, उनकी उपमा कहनेमें अच्छे-अच्छे कवि भी सङ्कोच [illegible] हैं। तुलसीदासके हृदयमें जो सीताजीके सहित वे किशोर [illegible] दोनों भाई सर्वदा विराजमान रहते हैं ॥ ४ ॥

[ १६ ]

तू देखि देखि री ! पथिक परम सुंदर दोऊ।
[illegible] काम-कोटि-कांतिहरन,
चरन-कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ ॥ १ ॥
[illegible] कटि निषंग, मुनिपट सोहैं सभग अंग
संग चंद्रवदनि वधू, सुंदरि सुठि सोऊ
[illegible] बर बेष किए, सोभा सब लूटि लिए
चितवे चोर, बय किसोर लोचन भरि [illegible]
[illegible] निहारि प्रेम-मगन [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

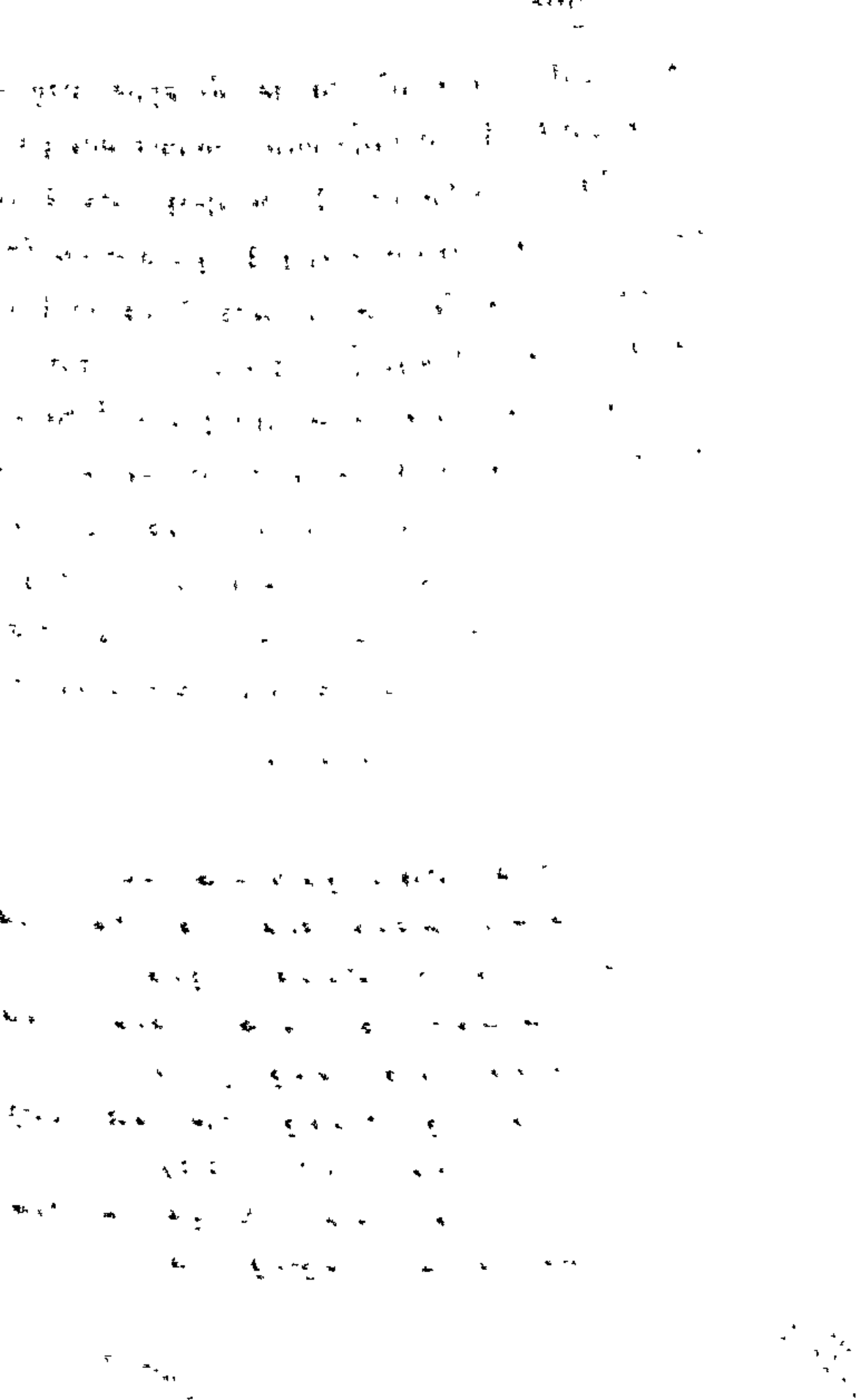

हो ॥ २ ॥ अरी सखि ! मैं जो कुछ कहती हूँ वह सुन, [illegible] मत हो और चित्तमें धैर्य धारण कर अपना जन्म सफल कर ले। कौन जाने, आज किस पुण्यके प्रतापसे हमें यह नेत्रोंका लाभ मिला है; इसीसे मैं तुझसे बार-बार कह रही हूँ ॥ ३ ॥ इस प्रकार सखीको [illegible] वह प्रेममें डूब गयी और उसे अपनी सुधि जाती रही। तुलसीदास कहते हैं, फिर तो वह पत्थरमें गढ़कर काढ़ी हुई (मूर्ति) के [illegible] [illegible] रह गयी। फिर यह कौन जाने कि वह [illegible] [illegible] और किसका कौन लगती थी ? ॥ ४ ॥

२० ।

माई ! मनक मोहन जोहन-जोग जोही।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ४ ॥

पथिक गोरे-साँवरे सुठि लोने।
संग सुतिय, जाके तनुतें लही है द्युति सोन सरोरुह सोने ॥ १ ॥
बय किसोर-सरि-पार मनोहर बयस-सिरोमनि होने।
[illegible] कहि ! सैंचहु बारि नयन मंजु मृदु दोने ॥ २ ॥
[illegible] हरत हरन, नहिं फेरत चारु बिलोचन कोने।
तुलसी प्रभु किधौं प्रभुको प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिनु टोने ॥ ३ ॥

ये गोरे-साँवरे पथिक बड़े ही सुन्दर और सलोने हैं। इनके [illegible] सुन्दरी स्त्री है [illegible] ॥ १ ॥ [illegible] ॥ २ ॥ [illegible]

[illegible]

[illegible]

'कुमारोंकी किशोरावस्था है, श्याम और गौरवर्ण है और धनुष-बाण धारण किये हैं। उनके सभी अङ्ग सहज शोभायुक्त हैं, नेत्रोंने कमलोंको जीत लिया है और मुख चन्द्रमाका निरादर करता है ॥ १ ॥ वे कमरमें मुनियोंके-से वस्त्र तथा तरकस कसे हुए हैं और सिरपर जटाओंका मुकुट बनाये हैं। उनकी अति मञ्जुल और सुन्दर मृदुल मूर्ति है, पैरोंमें जूतियाँ भी नहीं हैं, न जाने ये किस प्रकार मार्गमें चलकर आये हैं ॥ २ ॥ दोनोंके बीचमें एक सुन्दरी है, उन्हें देखकर हम तो मोहित हो गयी हैं। मानो साक्षात कामदेव ही अपनी प्रिया रति और प्रिय सखा वसन्तके साथ मुनिवेष बनाकर हमारे चित्तोंको हरे लिये जाता है' ॥ ३ ॥ यह सुनकर सब लोग जहाँ-तहाँ प्रेमसे भरकर उन्हें देखनेके लिये चल दिये। [illegible] कहने हैं, वटोही रामकी छवि देखकर मार्गके [illegible] धंधोंको भी भूल गये हैं ॥ ४ ॥

[ २६ ]

कैसे पितु-भातु, कैसे ते प्रिय-परिजन है ?
जगजलधि ललाम, लोने लोने, गोरे-स्याम.
जिन पठए हैं ऐसे बालकनि बन है ॥ १ ॥
रूपके न पारावार, भूपके कुमार मुनि-बेष.
देखत लोनाई लघु लागत मदन ह ।
सुखमाकी मूरति-सी, साथ निसिनाथ-मुखी
नखसिख अंग सब सोभाके सदन ह । २ ॥
पंकज-करनि चाप, तीर-तरकस कटि,
सरद-सरोजहुतें सुंदर चरन है ।

धरम-धुरीन धीर बीर रघुबीरजूको
कोटि राज सरिस भरतजूको राजु भो ॥ २ ॥
ऐसी बातैं कहत सुनत मग-लोगनकी
चले जात बंधु दोउ मुनिको सो साज भो।
ध्याइबेको, गाइबेको, सेइबे सुमिरिबेको,
तुलसीको सब भाँति सुखद समाज भो ॥ ३ ॥

[ मार्गस्थ स्त्री-पुरुष कहते हैं— ] राजाने राज्य देनेके लिये कहा था, इतनेहीमें वन जानेकी आज्ञा हो गयी। किन्तु इसपर रघुनाथजीका तो मुख खिल उठा और मन प्रसन्न हो गया। वे सोचने लगे—यह बड़ा भारी काम बना, इसमें माता-पिता और भाईका भी हित है और मेरा भी परम कल्याण है। आज विधाता मुझपर बीसों बिस्वे प्रसन्न हुआ है। [illegible]

[illegible]

सिरिस-सुमन सुकुमार [illegible]
[illegible]

[illegible] है, [illegible] ॥ १ ॥

[illegible]

[ १७ ]

[illegible]

मे भी अधिक प्रिय जान पड़ते थे। उन्हें विधाताने अमृत
स्नेहका भी सार लेकर रचा है। वे जैसे प्रिय लगते हैं वह
कहा नहीं जाता ॥ २ ॥ क्या उन पथिकोंको हम फिर भी
मिलेंगी'—ऐसा कहते ही उनके शरीर पुलकित हो जाते हैं,
नेत्रोंसे जलकी धाराएँ बहने लगती हैं। तुलसीदासजी कहते हैं,
कि लखकर ग्रामीण स्त्रियाँ शिथिल हो गयी हैं और
उनका परिश्रम ही प्रेममें सच्ची सिद्ध हो गयी हैं ॥ ३ ॥

[ ३९ ]

सौरी ! पथिक जे यहि पथ परौं सिधाए।
ते तौ राम-लषन अवधतें आए ॥ १ ॥
जे सिय सब अंग सहज सोहाए।
रति-काम-ऋतुपति कोटिक लजाए ॥ २ ॥
जो दसरथ, रानी कौसिला जाए।
कैकेयी कुचाल करि कानन पठाए ॥ ३ ॥
इन कुभामिनीके भूपहि क्यों भाए ?
हाय ! हाय ! राय धाम विधि भरमाए ॥ ४ ॥
गुरु सचिव काहू न समुझाए।
काँच-मनि लै अमोल मानिक गवाँए ॥ ५ ॥
जो मग-लोगनिके, देखन जे पाए।
तुलसी सहित जिन गुन-गन गाए ॥ ६ ॥

अरी आली ! परसों जो पथिक इस मार्गसे गये थे उनका
नाम राम-लक्ष्मण था और वे अयोध्यापुरीसे आये थे ॥ १ ॥ उनके
साथ सीताजी थीं। वे स्वभावसे ही सब अङ्गोंसे सौन्दर्यमें
उन्हें देखकर करोड़ों रति, कामदेव और ऋतुराज [illegible]

[illegible] सुधि जाती रही है और अब मन किसी दूसरी जगह नहीं जाता ॥२॥ उनकी चितवन और हँसीने मेरे चित्तको चुरा लिया है, उनके पवित्र प्रेमवश मैं बिरानी ( दूसरेकी ) हो रही हूँ [ अब अपनेपर मेरा अधिकार नहीं है ] ॥ ३ ॥ वे माता, पिता, प्रिय परिजन और भाई न जाने कैसे हैं जिन्होंने स्वयं जीवित रहते जीवोंके जीवन इन रघुनाथजीको वनमें भेज दिया है ॥ ४ ॥ उस [illegible]को चित्तमें लानेसे प्रेम बढ़ता है। अतः तुलसीदासने भी [illegible]वधुओंकी उस प्रीतिको गाया है ॥ ५ ॥

राग केदारा

[ ४१ ]

जबतें सिधारे यहि मारग लषन-राम,
जानकी सहित, तबतें न सुधि लही है।
अवध गए धौं फिरि, कैधौं चढ़े बिंध्यगिरि,
कैधौं कहुँ रहे, सो कछू, न काहू कही है ॥ १ ॥
एक कहै, चित्रकूट निकट नदीके तीर,
परनकुटीर करि बसे, बात सही है।
सुनियत, भरत मनाइबेको आवत हैं,
होइगी पै सोई, जो बिधाता चित्त चही है ॥ २ ॥
सत्यसंध, धरम-धुरीन रघुनाथजूको,
आपनी निबाहिबे, नृपकी निरबही है।
दस-चारि बरिस बिहार बन पदचार,
करिबे पुनीत सैल, सर-सरि, मही है ॥ ३ ॥
मुनि-सुर-सुजन-समाजके सुधारि काज,
बिगरि बिगरि जहाँ जहाँ जाकी रही है।

पुर पाँव धारिहैं, उधारिहैं, तुलसी हू से जन,
जिन जानि कै गरीबी गाढ़ी गही है।

जबसे राम और लक्ष्मण जानकीजीके सहित इस मार्गसे हैं तबसे उनकी कोई भी सुध नहीं मिली। वे अयोध्यापुरीको गये या विन्ध्याचल पर्वतपर चढ़े अथवा और कहीं रहे—यह कुछ भी नहीं बतलाया ॥१॥ कोई कहते हैं कि वे चित्रकूटके समीप मन्दाकिनी नदीके तटपर पर्णकुटी बनाकर रहने लगे हैं—यह बात बिल्कुल ठीक है। सुना जाता है कि भरतजी उन्हें मनानेके लिये आ रहे हैं परन्तु बात तो वही होगी जिसे विधाताने चित्तमें करना चाहा होगा ॥२॥ महाराज दशरथकी बात तो निभ गयी, अब तो धर्मधुरन्धर सत्यसन्ध रघुनाथजीको अपनी प्रतिज्ञा निभानी होगी। अतः वे चौदह वर्षतक वनोंमें पैदल फिरकर विहार करते हुए पर्वत, सरोवर, नदी और भूमिको पवित्र करेंगे ॥ ३ ॥ जहाँ जहाँ जिन-जिनकी अवस्था बिगड़ी हुई है उन ऋषि-मुनि, देवता और साधुजनोंके सारे कार्य सुधार कर वे अपनी राजधानीमें पधारेंगे और तुलसीदास जैसे सेवकोंका भी उद्धार करेंगे, जिन्होंने जान-बूझकर दीनताको दृढ़तासे पकड़ [illegible] ॥ ४ ॥

राग सारंग

२२

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी।
स्याम-गौर, धनु-बान-तूनधर चित्रकूट अब आइ रहे, री ॥१॥
इन्हहि बहुत आदरत महामुनि, समाचार मेरे नाह कहे, री।
बनिता-बंधु समेत बसे बन, पितु हित कठिन कलेस सहे, री ॥२॥

बरन परस्पर कहति किरातिनि, पुलक गात, जल नयन घरे, री।
तुलसी प्रभुहि बिलोकति एकटक, लोचन अनु बिनु पलक लरे, री ३

'अरी सखि ! ये परदेशी वीर मृगचर्मधारी राजकुमार हैं। ये सुन्दर और सुकुमारी श्याम-गौर बालक इस समय चित्रकूट पहुँचकर आकर रहने लगे हैं ॥ १ ॥ मेरे पतिदेवने यह समाचार सुना है कि बड़े-बड़े मुनीश्वर लोग इनका बहुत सम्मान करते हैं। इस समय ये सीता और भाईके सहित वनमें आ बसे हैं, इन्होंने अपने पिताके लिये बड़े-बड़े कष्ट सहे हैं' ॥ २ ॥ इस प्रकार किरातिनियाँ आपसमें बातचीत कर रही हैं, उनके अङ्ग पुलकित हो गये हैं और नेत्रोंसे जलकी धाराएँ बह रही हैं। तुलसीदास कहते हैं, प्रभुको देखकर उनके नेत्र तो मानो बिना पलकके ही हो गये हैं ॥ ३ ॥

## चित्रकूट-वर्णन

राग चंचरी

[ ४२ ]

चित्रकूट अति बिचित्र, सुंदर बन, महि पबित्र,
पावनि पय-सरित सकल मल-निकंदिनी।
सानुज जहँ बसत राम, लोक-लोचनाभिराम,
धाम बंग धामाबर बिस्व-बंदिनी ॥ १ ॥
सिद्धबर तहँ छंद पास, गावत कलकंठ हास,
कीरतन उनमाय काय क्रोध-कंदिनी।
बर बिधान करत गान, हारत धन-मान-प्रान
झरना झर झिंग झिंग झिंग जलतरंगिनी ॥ २ ॥

लोने नख-सिख, निरुपम, निरखत जोग,
बड़े उर-बंधुर, बिसाल भुज बर हैं।
लोने लोने लोचन, जटनिके मुकुट लोने,
लोने बदननि जीते कोटि सुधाकर हैं ॥ २ ॥
लोने लोने चलुष, बिसिष कर-कमलनि,
लोने मुनिपट, कटि लोने सरधर हैं।
प्रिया प्रिय बंधुको दिखावत बिटप, बेलि,
मंजु कुंज, सिलातल, दल, फूल, फर हैं ॥ ३ ॥
ऋषिनके आश्रम सराहैं, मृग-नाम कहैं
लागी मधु, सरित झरत निरझर हैं।
नाचत बरहि नीके, गावत मधुप-पिक,
बोलत बिहंग, नभ-जल-थल-चर हैं ॥ ४ ॥
प्रभुहि बिलोकि मुनिगन पुलके कहत
भूरिभाग भये सब नीच नारि-नर हैं।
तुलसी सो सुख-लाहु लूटत किरात-कोल
जाको सिसकत सुर बिधि-हरि-हर हैं ॥ ५ ॥

[illegible]

कुल मंजु, बकुलकुल, सुरतरु, ताल, तमाल।
कदलि, कदंब, सुचंपक, पाटल, पनस, रसाल ॥ ४ ॥
सुरह भूरि भरे जनु छबि-अनुराग-सभाग।
बन बिलोकि लघु लागहिं बिपुल बिबुध-बन-बाग ॥ ५ ॥
जाइ न बरनि राम-बन, चितवत चित हरि लेत।
ललित-लता-द्रुम-संकुल मनहु मनोज-निकेत ॥ ६ ॥
सरित-सरनि सरसीरुह फूले नाना रंग।
गुंजत मंजु मधुपगन, कूजत बिबिध बिहंग ॥ ७ ॥
लषन कहेउ, रघुनंदन, देखिय बिपिन-समाज।
मानहु चयन मयन-पुर आयउ प्रिय ऋतुराज ॥ ८ ॥
चित्रकूटपर राउर जानि अधिक अनुरागु।
सखासहित जनु रतिपति आयउ खेलन फागु ॥ ९ ॥
झिल्लि झाँझ, झरना डफ, नव मृदंग निसान।
भेरि उपंग भृंग रव, ताल कीर कलगान ॥ १० ॥
हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर।
गावत मनहु नारिनर मुदित नगर चहु ओर ॥ ११ ॥
चित्र-बिचित्र बिबिध मृग डोलत डागर डाग।
जनु पुरबीथिन बिहरत छल सबार स्वाग ॥ १२ ॥
नचहिं मोर, पिक गावहिं, सुर बर राग बधान।
निलज तरुन-तरुनी जनु खेलहिं समय समान ॥ १३ ॥
भरि भरि सुंड करिनि-करि जहँ तहँ डारहिं बारि।
भरत परसपर पिचकनि मनहु मुदित नर-नारि ॥ १४ ॥
पीठि चढ़ाइ सिसुन्ह कपि कूदत डारहिं डार।
जनु मुँह लाइ गेरु-मसि भए खरनि असवार ॥ १५ ॥

[illegible] हुए हैं। उस वनको [illegible] बहुतसे वन
और [illegible] भी तुच्छ जान पड़ते हैं ॥ ४-५ ॥ भगवान् रामके वनका
[illegible] नहीं हो सकता; वह देखते ही चित्तको [illegible] है और
[illegible] जान पड़ता है, मानो मनोहर [illegible] और [illegible] पूर्ण कामदेव-
का निवासस्थान ही हो ॥ ६ ॥ वहाँके नदी और तालाबोंमें रंग-
बिरंगे कमल खिले हुए हैं, जिनपर मनोहर भ्रमरगण गुंजार कर रहे
हैं तथा तरह-तरहके पक्षी कूज रहे हैं ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजी कहते हैं
'हे रघुनाथजी! इस वनका [illegible] जान पड़ता
है मानो कामदेवके नगरमें उसका प्रिय सुहृद् [illegible]
आनन्द मनाने आया हो। [illegible]
प्रेम देखकर मानो [illegible] आया
हो ॥ ८ ॥ वहाँ [illegible]
[illegible]
और [illegible]
इस वनमें [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

रंग छिड़कता हुआ विराजमान हो ॥ ४ ॥ इसने खेलमें ही असुर और नाग आदिको जीत लिया है तथा यह हठपूर्वक मुनीश्वरोंके मार्गमें गेंड़े अटकाये हुए है । तुलसीदास कहते यह कामदेव तो उसीको छोड़ता है जिसकी कमलनयन राम रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

[ ४० ]

ऋतु-पति आए भलो बन्यो बनसमाज । मानो भए हैं मद महाराज आज ॥१॥
मनो प्रथम फागु मिस करि अनीति । होरी मिस अरिपुर जारि जीति ॥
मारुत मिस पत्र-प्रजा उजारि । नयनगर बसाए बिपिन झारि ॥२॥
सिंहासन सैल-सिला सुरंग । कानन-छवि रति, परिजन कुरंग ॥
सित छत्र सुमन, बल्ली बितान । चामर समीर, निरझर निसान ॥३॥
मनो मधु-माधव दोउ अनिप धीर । बर बिपुल बिटप बानैत बीर ॥
मधुकर-सुक-कोकिल बंदि-बृंद । बरनहिं बिसुद्ध जस बिबिध छंद ॥४॥
महि परन सुमन-रस फल पराग । जनु देन इतर नृप कर-बिभाग ॥
कलि सचिव सहित नय-निपुन मार । कियो बिस्व बिबस बारिहि प्रकार ॥ ५ ॥
बिरहिनपर नित नइ परै मारि । डाँड़ियत सिद्ध-साधक प्रचारि ॥
तिनकी न काम सकै चापि छाँह । तुलसी जे बसहिं रघुबीर-बाँह ॥६॥

ऋतुराजके आनेपर वनकी शोभा बड़ी भली बन गयी है, मानो आज कामदेवको महाराज-पद प्राप्त हुआ हो ॥ १ ॥ अतः उन्होंने फागके मिससे मर्यादा छोड़कर [ वनरूप ] शत्रुके नगरपर विजय प्राप्तकर उसे होलीके बहाने जला ( भुना ) डाला हो और फिर वायुरूपमें पत्ररूप प्रजाको लूटकर समस्त

कौसल्याके बिरह-बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी।
तुलसिदास रघुबीर-बिरहकी पीर न जाति बखानी ॥ ४ ॥

[ माता कौसल्या कहती है— ] 'अरी मैया ! मुझे कोई नहीं समझाता। मुझे अभीतक विश्वास नहीं होता कि रामका वनगमन सत्य है या कोई स्वप्न हुआ है ॥१॥ राम, लक्ष्मण और सीता मेरे नेत्रोंके सामने सदा लगे ही रहते हैं, तो भी विधाता ऐसा विपरीत हो गया है कि इस हृदयका दाह दूर ही नहीं होता ॥२॥ रघुनाथजीके देखनेपर तो दुःख नहीं रह सकता और बिना देखे शरीरका रहना असम्भव है। किन्तु मेरे प्राणोंने अभीतक कूच नहीं किया, अतः सखि ! सुनो, इस नियममें अवश्य कोई गड़बड़ हुई है' ॥ ३ ॥ कौसल्याजीके ये विरह-वाक्य सुनकर सब रानियाँ रो पड़ीं। तुलसीदास कहते हैं, रघुनाथजीके विरहकी व्यथाका वर्णन नहीं हो सकता।

५

जब जब भवन बिलोकति सूनो
तब तब बिकल होति कौसल्या, दिन दिन प्रति दुख दूनो ॥ १ ॥
सुमिरत बाल-बिनोद रामके सुंदर मुनि-मन-हारी।
होत हृदय अति सूल समुझि पदपंकज अजिर-बिहारी ॥ २ ॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो माई।
स्याम-तामरस-नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई ॥ ३ ॥
जीवौ तौ बिपति सहौ निसिबासर मरौ तौ मन पछितायो।
चलत बिपिन भरि नयन रामको बदन न देखन पायो ॥
तुलसिदास यह दुसह दसा अति, दारुन बिरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोकजनित रुज मेरो ॥

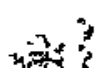

भगवान् राम अपने सुन्दर धनुषपर बाण चढ़ाये वनमें मृगया खेलते फिर रहे हैं। वह मधुर मूर्ति मेरे हृदयमें निवास करती है ॥ १ ॥ उनकी कमरमें पीताम्बर और अति सुन्दर चार बाण हैं। उनकी चालको देखकर करोड़ों नट ( नृत्यकार ) मुग्ध होकर तृण तोड़ते हैं, [ जिससे उस चालपर नजर न लगे ] । प्रभुके श्याम शरीरपर पसीनेकी बूँदें ऐसी शोभायमान हैं जैसे कोई नवीन मेघ अमृतके सरोवरमें डुबकी लगाकर निकला हो ॥ २ ॥ प्रभुके कन्धे बड़े सुन्दर हैं, भुजाएँ मनोहर हैं, वक्षःस्थल विशाल है और कण्ठकी रेखाएँ तो चित्तको चुराये लेती हैं। भगवान्‌का मुख देखनेसे बड़ा ही आनन्द देता है और मानो शरच्चन्द्रकी छविको छीने लेता है ॥ ३ ॥ प्रभुके सिरपर जटाओंका मुकुट है और जिस समय वे भौंहें सिकोड़कर अपने नयनकमलोंसे निशानेकी ओर ताकते हैं उस समयकी अपार शोभा तो सारे वनमें भी नहीं समाती; वह मर्यादा छोड़कर मानो चारों दिशाओंमें उमड़कर फैल जाती है ॥ ४ ॥ उस समय मृग और मृगी भी चकित होकर उन्हींकी ओर देखने लगते हैं, मानो सब-के-सब प्रभुको कामदेव समझकर मोहित हो गये हैं। तुलसीदास कहते हैं, किन्तु उस समय प्रभु बाण नहीं छोड़ते, क्योंकि वे स्वभावसे ही थोड़े-से प्रेमके भी वशीभूत हो जानेवाले हैं ॥ ५ ॥

## मारीच-वध

राग सोरठ

[ ३ ]

बैठे हैं राम-लषन अरु सीता।
पंचबटी बर परनकुटी तर, कहैं कछु कथा पुनीता ॥ १ ॥

कपट-कुरंग कनकमनिमय लखि प्रियसों कहति हँसि बाला।
पाए पालिबे जोग मंजु मृग, मारेहु मंजुल छाला ॥२॥
प्रिया-बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गवहिं चाप सर लीन्हें।
चल्यो भाजि, फिरि फिरि चितवत मुनिमख-रखवारे चीन्हें ॥३॥
सोहति मधुर मनोहर मूरति हेम-हरिनके पाछे।
धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै तुलसी उर आछे ॥४॥

पञ्चवटीमें सुन्दर पर्णकुटीके भीतर राम, लक्ष्मण और सीता बैठे हुए हैं और आपसमें कुछ पवित्र कथाएँ कह रहे हैं ॥ १ ॥ इतनेमें ही एक सुवर्ण और मणिमय कपटमृगको देखकर सीताजीने अपने प्रियतमसे हँसकर कहा—'यह मनोहर मृग यदि पकड़ लिया जाय तो पालनयोग्य है और यदि मारा भी जाय तो भी इसकी मृगछाला बड़ी सुन्दर है' ॥ २ ॥ प्राणप्रियाके ये वचन सुन हँसकर श्रीरघुनाथजीने उनके प्रेमवश धीरेसे हाथमें धनुष-बाण लिये। उन्हें देखकर वह मृग बार-बार पीछेको देखता हुआ दौड़ चला; उसने विश्वामित्र मुनिके यज्ञकी रक्षा करनेवाले भगवान् रामको पहचान लिया ॥ ३ ॥ सुवर्णमय मृगके पीछे भगवान्‌की अतिशय मधुर और मनोहर मूर्ति बड़ी शोभायमान जान पड़ती है। उस समयका प्रभुका दौड़ना, झुकना, देखना और थककर खड़ा रह जाना, तुलसीदासके हृदयमें अच्छी तरह बसा हुआ है ॥ ४ ॥

राग कल्याण

४

कर सर-चनु, कटि रुचिर निषंग।
प्रिया-प्रीति प्रेरित बन-बीथिन्ह बिचरत कपट-कनक-मृग संग ॥१॥

भुज बिसाल, कमनीय कंध-उर, स्रम-सीकर सोहैं साँवरे अंग।
मनु मुकुता मनि मरकतगिरि पर लसत ललित रवि-किरनि प्रसंग२
नलिन नयन, सिर जटा-मुकुट, बिच सुमन-माल मनु सिव-सिर गंग
तुलसिदास ऐसी मूरतिकी बलि, छबि बिलोकि लाजैं अमित अनंग३

प्रभुके हाथमें धनुष-बाण हैं और कमरमें मनोहर तरकस है। प्रियाकी प्रीतिसे प्रेरित होकर वे वन्यमार्गोंमें कपटमय कनकमृगके साथ-साथ डोल रहे हैं॥ १॥ उनकी भुजाएँ विशाल हैं, कंधे और वक्षःस्थल सुन्दर हैं तथा साँवले शरीरपर पसीनेकी बूँदें शोभायमान हैं मानो मरकतमणिके पर्वतपर मनोहर सूर्यकिरणोंका संग पाकर मोती सुशोभित हो रहे हैं॥ २॥ प्रभुके कमलके समान नेत्र हैं, सिरपर जटाओंका मुकुट है और उसके बीचमें पुष्पोंकी माला गुथी हुई है, जैसे शिवजीके मस्तकपर गङ्गाजी विराजमान हों। तुलसीदास ऐसी मूर्तिपर बलिहारी है, जिसकी छविको देखकर अनन्त कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं॥ ३॥

राग केदारा

[ ५ ]

राघव, भावति मोहि बिपिनकी बीथिन्ह धावनि।
अरुन-कंज-बरन चरन सोकहरन, अंकुस-कुलिस-केतु-अंकित अवनि
सुंदर स्यामल अंग, बसन पीत सुरंग, कटि निषंग परिकर मेरवनि
कनक-कुरंग संग, साजे कर सर-चाप, राजिवनयन इत उत चितवनि॥ २॥
सोहत सिर मुकुट जटा-पटल-निकर, सुमन-लता सहित रची बनवनि।
तैसेई स्रम-सीकर रुचिर राजत मुख, तैसिए ललित भ्रकुटिन्हकी

है। तुलसीदास तो प्रभुकी श्रवणसुखदायिनी, संसारसरित्निस्तारिणी
कीर्तिका ही गान करता है ॥ ५ ॥

राग सोरठ

[ ६ ]

रघुबर दूरि जाइ मृग मार्‍यो।
लषन पुकारि, राम हरुए कहि, मरतहु बैर सँभार्‍यो ॥ १ ॥
सुनहु तात! कोउ तुम्हहि पुकारत प्राननाथकी नाईं।
कहो लषन, हत्यौ हरिन, कोपि सिय हठि पठयो बरिआईं ॥ २ ॥
बंधु बिलोकि कहत तुलसी प्रभु 'भाई! भली न कीन्हीं।
मेरे जान जानकी काहू खल छल करि हरि लीन्हीं' ॥ ३ ॥

रघुनाथजीने बड़ी दूर जाकर उस मृगका वध किया। उसने
'हे लक्ष्मण!' ऐसा जोरसे पुकारकर, धीरेसे 'राम' कहा और इस
प्रकार मरते समय भी अपनी पूर्वशत्रुताको याद रक्खा ॥ १ ॥
तब सीताजीने कहा—'लक्ष्मण! सुनो, तुम्हें प्राणनाथ प्रभु रामके
समान कोई पुकार रहा है।' तब लक्ष्मणजीने कहा 'कुछ नहीं,
हरिण मारा गया है।' इसपर सीताजीने कुपित होकर उन्हें
हठपूर्वक बलात् भेज दिया ॥ २ ॥ उस समय भाईका आता तब
तुलसीदासके प्रभु भगवान् राम कहने लगे 'भैया! तुमने अच्छा
नहीं किया; मेरे विचारसे तो किसी दुष्टने इस प्रकार छल करके
जानकीको हर लिया है ॥ ३ ॥

सीता-हरण

[ ७ ]

आरत बचन कहति बैदेही।
बिलपति भूरि बिसूरि 'दूरि गए मृग सँग परम सनेही' ॥ १ ॥

[ १४ ]

मैं के कै जानत राम हियो हौं।
[illegible], सेवक-कृपालु-चित, पितु-पटतरहि दियो हौं॥ १॥
त्रिजगजोनि-गत गीध, जनम भरि खाइ कुजंतु जियो हौं।
महाराज सुकृती-समाज सब-ऊपर आजु कियो हौं॥ २॥
श्रवन बचन, मुख नाम, रूप चख, राम उछंग लियो हौं।
तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै बियो हौं॥ ३॥

'हे राम! मैं आपके हृदयको अच्छी तरह जानता हूँ। आप [illegible]की रक्षा करनेवाले और सेवकोंपर कृपालु हैं। इसीलिये मुझे पिताकी तुलना दी है॥ १॥ मैं तिर्यक् योनिके अन्तर्गत गीध जातिमें उत्पन्न हुआ और बहुत-से नीच जन्तुओंको खाकर जगत्में जीवित रहा; उसे महाराज! आज आपने पुण्यात्माओंके समाजमें सबसे ऊपर कर दिया!॥ २॥ अहा! मैं कानोंसे आपके वचन सुन रहा हूँ, मुखसे नाम ले रहा हूँ, नेत्रोंसे रूप निहार रहा हूँ और मुझे आपने स्वयं अपनी गोदमें ले रक्खा है। फिर बतलाइये, दूसरा ऐसा कौन है जो अपनेको मेरे समान बड़भागी बतला सके?'॥ ३॥

[ १५ ]

मेरे जान तात! कछू दिन जीजै।
देखिय आपु सुवन-सेवासुख, मोहि पितुको सुख दीजै॥ १॥
दिव्य-देह, इच्छा-जीवन जग बिधि मनाइ मँगि लीजै।
हरि-हर-सुजस सुनाइ, दरस दै, लोग कृतारथ कीजै॥ २॥
देखि बदन, सुनि बचन-अमिय, तन रामनयन-जल भीजै।
बोल्यो बिहग बिहँसि रघुबर! बलि, कहौं सुभाय, पतीजै॥ ३॥

जनक सुमिथा कौसिलाके पाहुने फल-सागके।
मुनि समुझि तुलसी जानु रामहि बस अमल अनुरागके॥ ६॥

इस समय देवतालोग पुष्प बरसाकर प्रसन्न हो रहे हैं और मनमें प्रसन्नचित्तसे प्रशंसा करते हुए आनन्दित होते हैं कि 'आज तो रवि और कौसी सुधासे लक्ष्मणजीके सहित भगवान् राम माँग-कर फल खा रहे हैं! प्रभु राम तो सम्पूर्ण यज्ञोंके भोक्ता हैं, सो ले खाते हैं और माँग रहे हैं तथा शबरी भी बराबर दे रही है'— इस प्रकार बड़े भाग्यशाली शिव और सनकादि सिद्धगण पुलकित होकर शबरीकी प्रशंसा करते हैं। अहा! माता कौसल्या और सुमित्राके पुत्र [ जो तरह-तरहके व्यञ्जनोंका भोग लगानेवाले हैं ] आज फल और शाकके मेहमान हैं! तुलसीदास कहते हैं, यह सुन और समझकर तू यह निश्चय जान कि भगवान् राम एकमात्र निर्मल मनके अधीन हैं॥ ६॥

रघुबर अँचइ उठे, सबरी करि प्रनाम कर जोरि।
हौं बलि बलि गई, पुरई मंजु मनोरथ मोरि॥
पुरई मनोरथ, स्वारथहु परमारथहु पूरन करी।
अघ-अवगुनन्हिकी कोठरी करि कृपा मुद-मंगल भरी॥
तापस-किरातिनि-कोल मृदु मूरति मनोहर मन धरी।
सिर नाइ, आयसु पाइ गवने, परमनिधि पाले परी॥ ७॥

[ इस प्रकार भोजन करनेके अनन्तर ] प्रभु आचमन करके उठे। तब शबरीने प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहा—'मैं बलि-बलि जाती हूँ, आज आपने मेरी प्रिय कामना पूरी कर दी। आपने मेरा

[illegible] कोई खोज नहीं की ॥ १ ॥ जिसके लिये मैंने लोकलज्जाको छोड़कर, शरीरको जीवित रख यह वियोग सहन किया है, हे कपिराज ! उसका आजतक तुमने कोई भी काम पूरा नहीं किया' ॥ २ ॥ यह सुन सुग्रीव भयभीत हो अपना मुख नीचा कर लिया और उसे कुछ भी उत्तर देनेका साहस न हुआ । इतने-में किष्किन्धा नगरमें वानरोंके बहुत-से यूथ आ गये, जिन्हें देखकर सर्वत्र आनन्द छा गया ॥३॥ उन सबको लौटनेकी अवधि निश्चित कर दसों दिशाओंमें भेजा गया और उन सबने भी इस कार्य-के लिये हृदयमें बल धारण किया । तुलसीदासजी कहते हैं, उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो भगवान् सीताजीके लिये एक बार फिर भवसागरको मथना चाहते हैं ॥ ४ ॥

# सुन्दरकाण्ड

## अशोकवनमें हनूमान्

राग केदारा

[ १ ]

रघुपति रामको जब पायो ।
गाल मेलि मुद्रिका, मुदित मन पवनपूत सिर नायो ॥ १ ॥

कृस सरीर सुभाय सोभित, लगी उड़ि उड़ि धूलि ।
मनहु मनसिज मोहनी-मनि गयो भोरे भूलि ॥ २ ॥
रटति निसिबासर निरंतर राम राजिवनैन ।
जात निकट न बिरहिनी-अरि अकनि ताते बैन ॥ ३ ॥
नाथके गुनगाथ कहि कपि दई मुँदरी डारि ।
कथा सुनि उठि लई कर बर, रुचिर नाम निहारि ॥ ४ ॥
हृदय हरष-बिषाद अति पति-मुद्रिका पहिचानि ।
दास तुलसी दसा सो केहि भाँति कहै बखानि ॥ ५ ॥

[illegible]

---

[illegible]

हौं हम पसु साखामृग चंचल, बात कहौं मैं बिषमानकी !
हौं हरि सिव-अज-पूज्य ग्यानघन, नहि बिसरति चह लगनि कानकी
मुख दरसन-सँदेस सुनि हरिको बहुत भई अवलंब प्रानकी ।
तुलसिदास गुन सुमिरि रामके प्रेम-मगन, नहि सुधि अपानकी ।४।

[हनूमान्‌जी बोले—] 'माता जानकि ! तुम मेरा सत्य वचन सुनो । भगवान् राम अपने सेवकके दुःखसे अत्यन्त दुःखित रहते हैं—यह उन करुणानिधिकी स्वाभाविक प्रकृति है ॥ १ ॥ उन्हें तुम्हारे वियोगजनित दुःखके कारण ही अपने बाणोंकी महिमा विस्मृत हो गयी है; नहीं तो बताओ कहाँ तो रघुनाथजीके बाणरूप सूर्य और कहाँ निशाचरोंका दलरूप अन्धकार ॥ २ ॥ मैं इसी मनकी बात कहता हूँ—कहाँ तो हम अत्यन्त चञ्चल पशु वानर और कहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेवके भी [illegible] भगवान् राम ! किन्तु हमसे गुप्त परामर्श करनेके [illegible] है हमारे कानोंमें लगना मुझे अभीतक नहीं [illegible] ॥ ३ ॥ यही तो सुग्रीवके मुखसे तुम्हारे दर्शन होनेके [illegible] प्राणोंका बड़ा भारी अवलम्ब मिला था ! [illegible] इस प्रकार भगवान् रामके गुणोंका स्मरण करते [illegible] ये गये और उन्हें अपनी सुधि न रही ॥ ४ ॥

## हनूमान् और रावणकी भेंट

राग कान्हरा

१२

रावन ! जुग पै राम रन रोषे ।
को सहि सकै सुरासुर समरथ, बिसिष काल-दसननितें चोषे ॥१॥

[illegible] ॥ ४ ॥ अहो ! जिनकी कृपासे पूर्वपुरुषोंने जगत्‌में जन्म लेकर समुद्रोंको रचा, खोदा और शोषण भी किया, यदि उन प्रभुको तुमने न पहचाना तो तुम्हारे बीस नेत्र घरके झरोखोंके समान ही हैं ॥ ५ ॥

राग मारू

[ १३ ]

जो हौं प्रभु-आयसु लै चलतो ।
तौ यहि रिस तोहि सहित दसानन ! जातुधान-दल दलतो ॥ १ ॥
रावन सो रसराज सुभट-रस सहित लंक-खल खलतो ।
करि पुटपाक नाक-नायकहित घने घने घर घलतो ॥ २ ॥
बड़े समाज लाज-भाजन भयो, बड़ो काज बिनु छलतो ।
लंकनाथ ! रघुनाथ-बैर-तरु आजु फैलि फूलि फलतो ॥ ३ ॥
काल-करम, दिगपाल, सकल जग-जाल जासु करतल तो ।
ता रिपुसों पर भूमि रारि रन जीवन-मरन सुथल तो ॥ ४ ॥
देखी मैं दसकंठ ! सभा सब, मोंतें कोउ न सबल तो
तुलसी अरि उर आनि एक अब एती गलानि न गलतो ॥ ५ ॥

रावण ! यदि मैं प्रभुकी आज्ञा लेकर [illegible] तुम्हारे सहित सम्पूर्ण राक्षससेनाका संहार कर [illegible] रावणरूप पारेको अन्य शूरवीररूप रसोंके सहित [illegible] खरलमें घोटता । इस प्रकार देवराज इन्द्रके [illegible] औषध तैयार करनेके लिये बड़े-बड़े घरोंको नष्ट कर [illegible] । [illegible] आज इस बड़े समाजमें मैं व्यर्थ ही लज्जाका पात्र हुआ [illegible] इस बड़े कार्यको मैं निःसन्देह कर सकता था [illegible] रघुनाथजीका [illegible]रूप वृक्ष आज खूब फैल-फूलकर फलित होता ॥ ३ ॥ काल, [illegible]

प्रश्न किया, परन्तु वे शब्द न निकाल सके। तुलसीदास कहते हैं, तब अन्तमें प्रभुने सखा सुग्रीव और भाई लक्ष्मणसे संकेतद्वारा कहा कि सेना सजाकर चलो ॥ ४ ॥

## वानरसेनाकी लंकायात्रा

राग मारू

[ २२ ]

जब रघुबीर पयानो कीन्हों।
क्षुभित सिंधु, डगमगत महीधर, सजि सारँग कर लीन्हों ॥ १ ॥
सुनि कठोर टंकोर घोर अति चौंके बिधि-त्रिपुरारि।
पटापटल ते चली सुरसरी सकत न संभु सँभारि ॥ २ ॥
भए बिकल दिगपाल सकल, भय भरे भुवन दसचारि।
खरभर लंक, ससंक दसानन, गरभ स्रवहिं अरि-नारि ॥ ३ ॥
कटकटात भट भालु, बिकट मरकट करि केहरि-नाद।
कूदत करि रघुनाथ-सपथ उपरी-उपरा बदि बाद ॥ ४ ॥
गिरि-तरुधर, नख मुख कराल, रद कालहु करत बिषाद।
चले दस दिसि रिस भरि 'धरु धरु' कहि, 'को बराक मनुजाद'? ५
पवन पंगु, पावक-पतंग-ससि दुरि गए, थके बिमान।
जाचत सुर निमेष, सुरनायक नयन-भार अकुलान ॥ ६ ॥
गए पूरि सर धूरि, भूरि भय अग थल जलधि समान।
नभ निसान, हनुमान-हाँक सुनि समुझत कोउ न अपान ॥ ७ ॥
दिग्गज-कमठ-कोल-सहसानन धरत धरनि धरि धीर।
बारहि बार अमरषत, करषत, करकैं परीं सरीर ॥ ८ ॥
चली चमू, चहु ओर सोर, कछु बनै न बरनै भीर।
किलकिलात, कसमसत, कोलाहल होत नीरनिधि-तीर ॥ ९ ॥

[ २४ ]

आपनी आपनी भाँति सब काहू कही है।
मंदोदरी, महोदर, मालवान महामति,
राजनीति-पहुँच जहाँलौं जाकी रही है॥ १॥
महामद-अंध दसकंध न करत कान,
मीचु-बस नीच हठि कुगहनि गही है।
हँसि कहै, सचिव सयाने मोसों यों कहत,
चहै मेरु उड़न, बड़ी बयारि बही है॥ २॥
भालु, नर, बानर अहार निसचरनिको,
सोऊ नृप-बालकनि माँगी धारि लही है।
देखो कालकौतुक, पिपीलिकनि पंख लागे,
भाग मेरे लोगनिके भई चित-चही है॥ ३॥
'तोसो न तिलोक आजु साहस, समाज-साजु,
महाराज-आयसु भो जोई, सोई सही है।'
तुलसी प्रनामकै बिभीषन बिनती करै
'ख्याल येधे ताल, कपि केलि लंका दही है'॥ ४॥

इसी प्रकार मन्दोदरी, महोदर और महामति मालवान् आदि सबने जिसकी जहाँतक राजनीतिमें पहुँच थी, अपनी-अपनी विधिसे रावणसे बहुत कुछ कहा॥ १॥ किन्तु महान् मदसे अंधा रहनेके कारण उसने कुछ भी नहीं सुना। उस नीचने मृत्युके वशीभूत होकर आग्रहपूर्वक कुमार्गको ही ग्रहण किया। वह हँसकर कहने लगा—'अहा! हमारे चतुर मन्त्री मानो ऐसी बात कहते हैं कि आई बड़ी तेज हवा चल रही है, इसलिये सुमेरु पर्वत उड़ना चाहता है!॥ २॥ अरे! रीछ, वानर और मनुष्य तो सदासे ही

तुलसी हुमुकि हिये हन्यो लात, 'भले तात',
चल्यो सुरतरु ताकि तजि घोर घामैं ॥ ४ ॥

[ विभीषण रावणसे कह रहा है— ] 'रामके समान कोई और स्वामी दिखलायी नहीं देता, जिनके विरदके बखानमें वेद, पुराण, कवि और विद्वज्जन रत रहते हैं तथा जिनके सुयशका श्रवण और गुणसमूहका गान करते रहते हैं ॥ १ ॥ जो माया, जीव, जगज्जाल, स्वभाव, कर्म और काल—सबका शासक है, जो सबमें व्याप्त है और जिसमें सब स्थित हैं, तथा जिनके नामको ब्रह्मा-जैसे रचयिता, विष्णु-जैसे पालक और शंकर-जैसे संहारक जपते रहते हैं ॥ २ ॥ वे ही राम नर-वेषमें अवतरित हुए हैं ऐसा जानो और मुझ दासकी विनय मानकर ऐसी सलाह करो जिससे अन्तमें भला हो। देखो, कुठारधारी परशुराम-जैसे शूरशिरोमणिने भी देख-दिखाकर समझ लिया कि यहाँ [ अर्थात् रामसे ] सन्धि कर लेनेमें ही कल्याण है ॥ ३ ॥ विभीषणके ये वाणीको विभूषित करनेवाले वचन सुनकर रावणको अनुकूल होनेपर भी अत्यन्त प्रतिकूल तथा दुःखमय और दूषित जान पड़े। अतः उसने हुमककर उनकी छातीमें लात मारी। तब विभीषण 'भैया! अच्छा!!' ऐसा कह [ रावणरूप ] घोर घामको त्याग कर [ रामरूप ] कल्पवृक्षकी ओर चल पड़े ॥ ४ ॥

## विभीषण-शरणागति

[ २६ ]

जाय माय पायँ परि कथा सो सुनाई है।
समाधान करति विभीषनको बार बार,
'कहा भयो तात! लात मारे, बड़ो भाई है ॥ १ ॥

[illegible] यह कहते हुए चले ॥ १ ॥ दसों दिशाओंमें [illegible] होते दिखायी दे रहे हैं—इससे उनका शोक दूर हो गया, नेत्रोंमें जल भर आया, हृदय आनन्दपूर्ण हो गया और [illegible] अत्यन्त पुलकित हो गया ॥ २ ॥ [ वे कहने लगे— ] [illegible] भाईका भाव तो मेरे लिये अच्छा ही हुआ, यद्यपि उसने [illegible] तो मेरा अहित चाहकर ही किया था। विधाताने मेरी बात बना दी, अतः रावणकी लात मेरे लिये तो कुबेरकी लात हो गयी [ अर्थात् जैसे कुबेरमें लात लगनेसे वह सीधा हो जाता है, उसी प्रकार रावणकी लात लगनेसे मुझे भगवान् रामकी भगवती शरण मिलनेकी सम्भावना हो गयी ] ॥ ३ ॥ यदि ऐसा न होता तो श्रीमहादेवजी कुबेरके घर मिलकर हृदयमें मेरा हित विचार कर ऐसी बात क्यों कहते ? जिसे सुनकर मैंने अपनी कुटिलता छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीकी शरण ताकी है ॥ ४ ॥ उन कृपासागर त्रिशूलधरने अनायास ही अनुकूल होकर मुझे आनन्दजनक मार्ग दिखलाया और अपना दीनजन जानकर इस दासको आदरपूर्वक अपना लिया ॥ ५ ॥ उनकी कृपासे मुझे स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही करतलगत हो गये और प्रेमका मार्ग निवृत्त हो गया। यह मैं स्वप्न देख रहा हूँ या प्रत्यक्ष ही हो रहा है। [ मेरी अवस्था तो ऐसी है कि मेरे सुखरूप अन्नको आज स्वयं देवतालोग सींच और ला रहे हैं [ अर्थात् मुझे अत्यन्त सुख मिल रहा है ] ॥ ६ ॥ अब मैं अपने गुरु [illegible] [illegible], स्वामी सीतापति श्रीराम और हितकारी हनुमान्‌जीसे [illegible] मिलूँगा। अब मुझे करना ही क्या है ? मुझे तो अब अचानक अभीष्ट फलकी सीमा मिल गयी ॥ ७ ॥ कौन जाने मैं महान् [illegible]

किया ॥ १ ॥ [ तथा उनसे पूछा— ] 'आपलोग इस सम्बन्धमें क्या कहते हैं ?' प्रभुकी आज्ञा पा उन्होंने धर्म और नीतिके अनुकूल उत्तर दिये। वे बोले—प्रभो ! यह महाबलवान् और अत्यन्त भाई है जिसने मोहवश बरबस ही आपके प्रति शत्रुताके वेष बोये हैं [ इसलिये इससे सावधान रहना ही ठीक है ] ॥ २ ॥ किन्तु हे बाँह-पगार ( अपनी भुजारूप दीवारसे आश्रितकी रक्षा करनेवाले ) ! आपके द्वारपर आकर कोई भी भयभीत कभी उलटा नहीं लौटा !' तुलसीदासजी कहते हैं, प्रभुके 'अशरण-शरण' ऐसे विरद तो नित्य नये विराजमान हैं ॥ ३ ॥

[ ३३ ]

हिय हँसि कह हनुमानसों।
सुमति साधु सुचि सुहृद बिभीषन बूझि परत अनुमानसों ॥१॥
'हौं बलि जाउँ और को जानै ?' कही कपि कृपानिधानसों।
उलटो न होइ स्वामि सनमुख, ज्यों तिमिर सातहयजानसों ॥२॥
खोटो खरो सभीत पालिये सो, सनेह सनमानसों।
तुलसी प्रभु कीबो जो भलेइ, सोइ बूझि सरासन-बानसों ॥३॥

तब रघुनाथजी हृदयमें हँसकर हनुमान्‌जीने कहने लगे 'अनुमानसे तो मुझे विभीषण सुमति, साधु, सुविचित्त और सुहृद ही जान पड़ता है' ॥ १ ॥ तब हनुमान्‌जीने कृपानिधान भगवान्‌से कहा—मैं बलिहारी जाऊँ, आपसे बढ़कर इस विषयमें और कौन जान सकता है ! जिस प्रकार अन्धकार सूर्यके सम्मुख नहीं ठहर सकता उसी प्रकार उलटा पुरुष तो प्रभुके सामने भी नहीं आ सकता ॥ २ ॥ वह सभीत है; अतः वह अच्छा हो या

[ ३५ ]

चले लेन लखन-हनुमान हैं।
मिले मुदित बूझि कुसल परस्पर, सकुचत करि सनमान हैं ॥१॥
बोले रघुपति पाँउ धारिए, बोलत कृपानिधान हैं।
'तेहिं दीनबंधु देखे, जनु देत अभय-बरदान हैं ॥२॥
मेटै सहस हिमभानु, तेज सतकोटि भानुहूके भानु हैं।
जगतनिको हित कोटि मातु-पितु अरिन्हको कोटि कृसानु हैं ॥३॥
सगुन रज गिरि गनि, सकुचत निज गुन गिरि रज-परमानु हैं।
टेक-पगारु, बोलको अबिचल, बेद करत गुनगान हैं ॥४॥
गरु चाप-तूनीर तामरस-करनि सुधारत बान हैं।
बरषा चलति बिभीषनकी, सोइ सुनत सुचित दै कान हैं ॥५॥
हरषत सुर, बरषत प्रसून सुभ सगुन कहत कल्यान हैं।
तुलसी ते कृतकृत्य, जे सुनिरत समय सुहावनो ध्यान हैं ॥६॥

तब विभीषणको लेनेके लिये लक्ष्मणजी और हनूमान्‌जी चले। वे प्रसन्नतापूर्वक मिले और कुशल पूछकर परस्पर सम्मान करते हुए सकुचाने लगे ॥ १ ॥ वे बोले—पधारिये, भगवान्‌की आज्ञा हो गयी है, कृपानिधान रघुनाथजी आपको बुला रहे हैं।' तब विभीषणने तुरंतसे प्रभुको देखा, मानो वे जनपको वर दे रहे हैं ॥ २ ॥ तथा सहस्रों चन्द्रमाओंके समान, तेजमें अरबों सूर्योंके भी सूर्य, भक्तोंके लिये करोड़ों माता-पिताओंके समान हितकारी और शत्रुओंके लिये करोड़ों अग्नियोंके समान है ॥ ३ ॥ वे अपने भक्तके रजतुल्य गुणोंको पर्वत-समान समझकर सकुचाते हैं और अपने पर्वतुल्य गुणोंको रजवत् समझते हैं। प्रभु अपनी भुजाओंसे सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले और प्रतिज्ञाके पक्के हैं, ऐसा वेद

हो सकता है। यह बात तुलसीदासने शङ्करको साक्षी कर, उच्च, सौगन्ध खाकर कही है ॥ ६ ॥

[ ४० ]

कहो, क्यों न बिभीषनकी बनै ?
जो छाड़ि छल सरन रामकी, जो फल चारि चारयौ जनै ॥१॥
गलमूल प्रनाम जासु जग, मूल अमंगलके खनै।
हि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै ? ॥२॥
म-प्रताप पतितपावन किए, जे न अघाने अघ अनै।
कोउ उलटो, कोउ सूधो जपि भए राजहंस वायस-तनै ॥३॥
हुतो ललात कुसगात खात खरि, मोद पाइ कोदो-कनै।
सो तुलसी चातक भयो जाचत राम स्यामसुंदर घनै ॥४॥

कहो, बिभीषणकी बात क्यों न बने। जो छल त्यागकर भगवान् रामकी शरण गये थे, जो कि चार प्रकारके भक्तोंके लिये चारों प्रकारके फल उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥ जिनको किया हुआ नमस्कार संसारमें अमंगलकी जड़को उखाड़ डालता है उन्हीं रघुनाथजीने जिनके सिरपर अपना हाथ रक्खा उन बिभीषणजीकी महिमा कौन कह सकता है ॥ २ ॥ जो पाप और अनीति करने कभी नहीं अघाये थे उन पतितोंको भी प्रभुने अपने नामके प्रतापसे ही पवित्र कर दिया। कोई उलटा और कोई सीधा नाम जपकर ही काकवत् आचरणवाले भी राजहंसवत् शुद्ध हो गये ॥ ३ ॥ जो दुर्बलशरीरवाला था और खड़े खाता था [ जिसे खानेको निस्सार वस्तुएँ ही मिलती थीं ], जो एक-एक टुकड़ेके लिये लालायित रहता था और कोदोके कण ( साधारण भोजन ) पाकर भी बड़ा आनन्द

पंगु-अंध, निरगुनी-निसंबल, जो न लहै जाचे जलो।
सो निबह्यो नीके, जो जनमि जग राम-राजमारग चलो ॥२॥
[illegible]-दिवाकर-कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो।
सुतहित नाम लेत भवनिधि तरि गयो अजामिल-सो खलो ॥३॥
प्रभुपद प्रेम प्रनाम-कामतरु सद्य बिभीषनको फलो।
तुलसी सुमिरत नाम सबनिको मंगलमय नभ-जल-थलो ॥४॥

रामकी शरण जानेपर सभीका भला होता है; चाहे वह धनी हो या निर्धन, बड़ा हो या छोटा, बुद्धिमान् हो या मूर्ख अथवा दुर्बल हो या अति बलवान् ॥ १ ॥ जो पंगु, अंधे, गुणहीन और अकिंचन हैं, जिन्हें माँगनेपर जलतक नहीं मिलता, उन्होंने भी यदि संसारमें जन्म लेकर रामके राजमार्ग (भक्तियोग) का अवलम्बन किया है तो प्रभुने उनको खूब निभाया है ॥ २ ॥ रामनामके प्रताप-रूप सूर्यकी प्रखर किरणोंमें कलिकल्मष भी तुषारके समान पिघल जाता है। देखो, पुत्रके मिससे ही उनका नाम लेनेके कारण अजामिल-जैसा दुष्ट भी भवसागरसे पार हो गया था ॥ ३ ॥ प्रभुके चरणोंमें प्रेमपूर्वक किया हुआ विभीषणका प्रणामरूप कल्पवृक्ष तत्काल ही फलित हो गया। तुलसीदासजी कहते हैं, इसी प्रकार प्रभुका नाम स्मरण करते ही सबके लिये आकाश, जल और स्थल सभी मङ्गलमय हो जाते हैं ॥ ४ ॥

४३

सुजस सुनि श्रवन हौं नाथ! आयो सरन।
उपल-केवट-गीध-सबरी-संसृति-समन,
सोक-श्रम-सीव सुग्रीव आरतिहरन ॥ १ ॥

[illegible] करनेवाले परम धीर रघुवंशी वीर हैं ॥ २ ॥ मैं राक्षसराज [illegible] भाई हूँ, मेरा नाम विभीषण है, मैं भाईके तिरस्कारसे [illegible] हुई महान् ग्लानिसे गला जा रहा हूँ। हे पतितपावन! हे [illegible]! हे करुणासिन्धो! आप मुझे लक्ष्मणजीद्वारा सेवित [illegible] चरणोंमें आश्रय दीजिये' ॥ ३ ॥ विभीषणके ये दीनता और [illegible] सने हुए मधुर वचन सुनकर प्रभुका शरीर प्रेमसे पुलकित हो गया और नेत्रोंमें जल भरने लगा। तब दीनोंके दुःख, दोष और [illegible] दूर करनेवाले प्रभुने उन्हें 'लंकेश' कहकर बुलाया और [illegible] भर आलिंगन कर उनका राजतिलक कर दिया ॥ ४ ॥ [illegible] जातिका राक्षस और अपना शत्रु होनेसे सब प्रकार त्याज्य था, तब भी मङ्गलकर्ता श्रीहरिने उसे सब प्रकार कल्याणका पात्र कर दिया। तुलसीदासजी कहते हैं, रघुवंशमणि भगवान् राम बड़े ही दयालुचित्त हैं; उन्होंने 'रक्षा करो' ऐसा कहते ही किसे दूसरोंको तारनेवाला नहीं बना दिया! ॥ ५ ॥

[ ४४ ]

दीन-हित बिरद पुराननि गायो।
आरत-बंधु, कृपालु, मृदुल-चित जानि सरन हौं आयो ॥ १ ॥
तुम्हरे रिपुको अनुज बिभीषन, बंस निसाचर जायो।
सुनि गुन-सील-सुभाउ नाथको मैं चरननि चितु लायो ॥ २ ॥
जानत प्रभु दुख-सुख दासनिको, तातें कहि न सुनायो।
करि करुना भरि नयन बिलोकहु, तब जानौं अपनायो ॥ ३ ॥
बचन बिनीत सुनत रघुनायक हँसि करि निकट बुलायो।
भेंट्यो हरि भरि अंक भरत-ज्यौं, लंकापति मन भायो ॥ ४ ॥
करपंकज सिर परसि अभय कियो, जनपर हेतु दिखायो।
तुलसिदास रघुबीर भजन करि को न परमपद पायो? ॥ ५ ॥

[illegible] रघुपतिके वचन विभीषन प्रेम-मगन, मन चाउ।
[illegible] तजि आस-त्रास सब ऐसे प्रभुकहँ गाउ ॥ ५ ॥

[illegible]

और कृपाकी खान है तथा अपने अंगोंसे अनेकों कामदेवों-की करोड़ों छविका भी निरादर करती है ॥ १ ॥ जिसके सिरपर सुन्दर है, हाथमें धनुष-बाण हैं और वक्षःस्थलपर मनोहर वनमाला शोभित रहती है।' तुलसीदासजी कहते हैं, इस प्रकार रघुनाथजी-के सौन्दर्यका स्मरणकर सीताजी प्रेममें मग्न हो रही हैं; उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं है ॥ २ ॥

राग केदारा

[ ४८ ]

कहु, कबहुँ देखिहौं आली ! आरज-सुवन।
सानुज सुभग-तनु जबतें बिछुरे बन,
तबतें दव-सी लगी तीनिहु भुवन ॥ १ ॥
मूरति सूरति किये प्रगट प्रीतम हिये,
मनके करन चाहैं चरन छुवन।
चित चढ़िगो बियोग-दसा न कहिये जोग,
पुलक गात, लागे लोचन चुवन ॥ २ ॥
तुलसी बिजटा जानी, सिय अति अकुलानी
मृदुबानी कह्यौ येहैं दवन-दुवन।
तमचर-तम-हारी सुरकंज-सुखकारी
रविकुल-रवि अब चाहत उवन ॥ ३ ॥

सखी त्रिजटे ! बता तो, क्या मैं कभी भाई लक्ष्मणसहित अपने आर्यपुत्रका दर्शन कर सकूँगी ! जबसे वनमें उनका बिछोह हुआ है तबसे मेरे लिये तो तीनों लोकोंमें दावाग्नि-सी लगी हुई है ॥ १ ॥ उन मूर्तिकी याद करते ही प्रियतम मेरे हृदयमें प्रकट हो जाते हैं, मैं मनोमन हाथोंसे उनके चरण-स्पर्श करना चाहती हूँ, किन्तु जब वियोग-दशाका विचार उठता है ( अर्थात् जब मुझे उनके

...र कर अब जीवनकी आशा छोड़कर उससे कूच करना ...हैं। इस समय प्रभुके सुयशरूप अमृतसे सींचकर यद्यपि तूने ...रोक लिया है तो भी उन्हें तृप्ति नहीं हुई है ॥ ३ ॥ वे तो ...की विरहरूप प्रबल नदीमें विवेकके बलसे और धैर्यके साथ बहे ...ते थे। परन्तु पवित्रचित्त पवनपुत्रने मुद्रिकारूप आधार देकर ...हें टेककर पकड़ लिया' ॥ ४ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, अरी ...खी ! मेरे मनरूप वनमें तो सब प्रकार शोकरूप तुच्छ मृग भरे ...ए हैं। [ इसपर त्रिजटा कहती है—] 'सखि सीते ! अब तू अपने ...सका सन्देह छोड़ दे। देख, दोनों वीर अहेरी ( शिकारी ) आ ...ये हैं [ वे इन सब मृगोंको मार डालेंगे ]' ॥ ५ ॥

राग बिलावल

[ ५० ]

सो दिन सोनेको, कहु, कब पैहै !
जा दिन बँध्यो सिंधु त्रिजटा ! सुनि तू संभ्रम आनि मोहि सुनैहै१
बिस्वदवन सुर-साधु-सतावन रावन कियो आपनो पैहै।
कनक-पुरी भयो भूप बिभीषन, बिबुध-समाज बिलोकन धैहै ।२।
दिब्य दुंदुभी, प्रसंसिहैं मुनिगन, नभतल बिमल बिमाननि छैहै।
बरषिहैं कुसुम भानुकुल-भनिपर, तब मोको पवनपूत लै जैहै ।३।
अनुज सहित सोभिहैं कपिन महँ, तनु-छबि कोटि मनोज्ञहि तैहै।
इन नयननि यहि भाँति प्रानपति निरखि हृदय आनँद न समैहै ४।
बहुरो सदल सनाथ सलछिमन कुसल कुसल बिधि अवध देखैहै।
गुरु, पुरलोग, सास, दोउ देवर, मिलत दुसह उर तपनि बुतैहै॥५॥
मंगल-कलस, बधावने घर घर, पैहैं माँगने जो जेहि भैहै।
बिजय राम राजाधिराजको, तुलसिदास पावन जस गैहै ॥६॥

कटकटे कपि-भालु काल-सम कौतुक ही पाथोधि बँधैहैं।
देखबो दुर्ग दुरेखो लंकगढ़, बिकल जातुधानी पछितैहैं ॥ २ ॥
खेचर-सलभ कृसानु रान-सर उड़ि उड़ि परत जरत जड़ जैहैं।
सकल सँहारि परिवार भगनको, जनपुर जात बहुत सकुचैहैं ॥३॥
कृपा सारि, अरनाय बिभीषन, अभय-बाँह दै अमर बसैहैं।
अघ पुनि मुनि, बरषिहैं सुमन सुर, व्योम बिमान निसान बजैहैं ४
सेतु समेत प्रानबल्लभ पद परसि सकल परिताप नसैहैं।
धन्य धन्य दिसि देखि तुमहि सब नयनवंत लोचन-फल पैहैं ॥५॥
तुम अति हित चितवहौ नाथ-तनु, बारबार प्रभु तुमहि चितैहैं।
यह सोना, सुख-समय बिलोकत काहू तो पलकैं नहिं लैहैं ॥६॥
देवकुल-सदन-सुजस-जय-जानकिसहित कुसल निज नगर सिधैहैं
मन पुनकि आनंद मुदित मन तुलसिदास कल कीरति गैहै ॥७॥

[ त्रिजटा बोली—] सीते ! धैर्य धारण करो, अब पवनपुत्रे हनुमान्‌जी उन्हीं को ले आवेंगे। वे लक्ष्मण के प्राण हैं, इसलिये देरी नहीं करेंगे ॥ १ ॥ वे कटकटाते हुए भालु और वानरोंकी सेना सजाकर खेलसे ही समुद्रको बाँध लेंगे और उन लंकाको घिरी हुई देखेंगे, और राक्षसियाँ पछताती होकर पछतावेंगी ॥२॥ राक्षसरूप जड़ पतंगे उड़-उड़कर भगवान्‌रूपी अग्निमें गिरकर जलते जायँगे, तब भगवान् अपने परिवारको मारकर जनकपुरीको जाते हुए बहुत सकुचावेंगे ॥ ३ ॥ भगवान् शरणागत विभीषणको अपनाकर उसे राजतिलक करेंगे और देवताओंको अभयबाहु देकर देवलोकमें बसावेंगे। उस समय भगवान् अयोध्यामें आवेंगे, देवतालोग फूल बरसावेंगे और आकाशमें विमानोंका बाजा बजेगा ॥ ४ ॥ तब भाइयोंसहित अपने प्राणप्रिय रघुनाथजीके

यपि अंगद नीति परम हित कह्यौ, तथापि न कछु मन भायो।
तुलसिदास सुनि बचन क्रोध अति, पावक जरत मनहु घृत नायो ५

[ अंगदजी बोले— ] 'रावण ! तुम अच्छे कुलमें उत्पन्न हुए हो। तिसपर भी श्रीमहादेवजीकी पूजा, ब्रह्माजीके वरदान और अपने विपुल बाहुबलसे तुमने जगत्में सुयश प्राप्त किया है ॥ १ ॥ जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा, कबन्ध और बालि आदि शत्रुओंको परलोक भेज दिया है, मैं उन्हींका दूत हूँ और तुम्हें पवित्रचरित्र श्रीहरिका सन्देश सुनानेके लिये आया हूँ ॥ २ ॥ तुम ऐश्वर्यके अभिमान, राजपद अथवा मोहके अधीन होकर जानकर या बिना जाने किसी प्रकार जानकीको हर लाये हो, अब उन्हें रघुनाथजीको लौटा दो और कपट त्याग कर उन करुणामय प्रभुका भजन करो— इतनी हमारी शिक्षा मान लो ॥ ३ ॥ जिससे तुम्हारा हित हो और तुम्हारा कुल सकुशल रहे तथा राज्य अविचल होकर किसीका टाला न टले। नहीं तो, हे मूढ़ ! तुम रामचन्द्रजीके प्रतापरूप अग्निमें पतंग होकर दौड़-दौड़कर गिरोगे' ॥ ४ ॥ इस प्रकार यद्यपि अंगदजीने यह परम हितकारी नीति कही, तथापि रावणको यह कुछ भी अच्छी न लगी। तुलसीदासजी कहते हैं, ये वचन सुनकर उसे बड़ा ही क्रोध हुआ, मानो जलती हुई अग्निमें घृत डाल दिया गया हो ॥५॥

[ ३ ]

तैं मेरो मरम कछू नहिं पायो।
रे कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर! मोहि दास-ज्यों डाटन आयो ॥१॥
भ्राता कुंभकरन रिपुघातक, सुत सुरपतिहि बंदि करि ल्यायो।
निज भुजबल अति अतुल कहौं क्यों, कंदुक ज्यों कैलास उठायो॥२॥

[ ४ ]

सुनु खल ! मैं तोहि बहुत बुझायो ।
पर्यो मान सठ ! भयो मोहबस, जानतहू चाहत विष खायो ॥१॥
जगत-विदित अति बीर बालि-बल जानत हौ, किधौं अब बिसरायो ।
बिनु प्रयास सोउ हत्यो एक सर, सरनागतपर प्रेम देखायो ॥२॥
पावहुगे निज करम-जनित फल, भले ठौर हठि बैर बढ़ायो ।
बानर-भालु चपेट लपेटनि मारत, तब ह्वैहै पछितायो ॥ ३ ॥
हौं ही दसन तोरिबे लायक, कहा करौं, जो न आयसु पायो ।
अब रघुबीर-बान-बिदलित-उर सोवहिगो रनभूमि सुहायो ॥ ४ ॥
अबिचल राज बिभीषनको सब, जेहि रघुनाथ-चरन चित लायो ।
तुलसिदास यहि भाँति बचन कहि गरजत चल्यो बालि-नृप-जायो

[ अंगदजीने कहा—] 'अरे दुष्ट ! सुन, मैंने तुझे बहुतेरा समझाया, परन्तु तू मोहवश ऐसे घमंडमें भर गया है कि जान-बूझकर विष खाना चाहता है ॥ १ ॥ जगत्प्रसिद्ध महान् वीर बालिका बल तो तू जानता है न, या अब भूल गया ? देख, उसे रघुनाथजीने अनायास एक बाणसे ही मार डाला और अपने शरणागत सुग्रीवपर प्रेम दिखलाया ॥ २ ॥ तुम भी अपने कर्मोंका फल भोगोगे, तुमने आग्रह-पूर्वक अच्छी जगह वैर बढ़ाया है ! अब, जिस समय रीछ और वानर तुम्हें चपेटमें लेकर मारेंगे उस समय पश्चात्ताप होगा ॥ ३ ॥ तुम्हारे दाँत तोड़नेके लिये तो मैं ही पर्याप्त हूँ; परन्तु करूँ क्या, इसके लिये मैंने प्रभुकी आज्ञा प्राप्त नहीं की है । अब तुम शीघ्र ही रामचन्द्रजीके बाणोंसे छिन्नहृदय होकर सुन्दर युद्धभूमिमें सोओगे ॥४॥ तुम्हारा यह अविचल राज्य तो मार-काट-सारा विभीषणको ही मिलेगा

त्रिभुवनविजयी जीत लिया। अब तुम्हारे बिना इस शरीरको रखकर मैंने इस लोकमें अपकीर्ति ही कमायी है॥ ३॥ अहो! मेरी प्रतिज्ञाकी तुम्हें यहाँतक लाज है कि उसके लिये अपने प्रिय प्राणतक दे डाले हैं; इसीलिये यद्यपि शक्ति तो विभीषणके हृदयपर लगनेवाली थी, परन्तु उसकी रक्षा करनेके लिये तुम उसकी ढाल बन गये!'॥ ४॥ प्रभुके ये वचन सुनकर रीछ, वानर और देवतागण शोकसे सूख गये। तुलसीदासजी कहते हैं, इसी समय ब्रह्मारूप हनूमान्‌जीने [ ओषधिके सहित आकर ] मानो उन्हें फिरसे नया बना दिया॥ ५॥

राग सोरठ

[ ६ ]

सोचै तौ न कछू है आई।
बोर निबाहि भली बिधि भायप चल्यौ लखन-सो भाई॥ १॥
पुर, पितु-मातु, सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई॥ २॥
जानत हौं या उर कठोरतें कुलिस कठिनता पाई।
सुनिरि सनेह सुनिधा-सुतको दरकि दरार न जाई॥ ३॥
तात-मरन, तिय-हरन, गीध-बध, भुज दाहिनी गँवाई।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई॥ ४॥

'हाय! मुझसे तो कुछ भी नहीं बना' आज लक्ष्मण-जैसा भाई भी भ्रातृत्वका अन्ततक अच्छी तरह निर्वाह करके चल गया॥ १॥ जिसने नगर, पिता, माता और सब प्रकारके सुख त्यागकर मेरी वनकी विपत्तिको बँटाया था उसके साथ मैं अपने प्राणोंको भी शोक त्यागकर सुरलोक नहीं भेज सका!॥ २॥ मालूम होता है, वज्रसे भी

होकर थकित हो गये। तब जाम्बवान्‌ने हनूमान्‌जीको बुलाकर उत्तेजित किया ॥ ४ ॥

राग मारू

[ ८ ]

जौ हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चंद्रमहि निचोरि चैल-ज्यौं, आनि सुधा सिर नावौं ॥ १ ॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ॥२॥
बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु-अनुग कहावौं।
पटकौं मींच नीच मूषक-ज्यौं, सबहिको पापु बहावौं ॥३॥
तुम्हरिहि कृपा, प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी-प्रभु, जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥४॥

[ तब हनूमान्‌जी कहने लगे— ] 'प्रभो ! यदि इस समय मुझे आज्ञा मिले तो मैं चन्द्रमाको वस्त्रके समान निचोड़कर उससे अमृत लाकर ही आपको सिर नवाऊँ ॥ १ ॥ अथवा पातालमें [ अमृतकी रक्षा करनेवाले ] सर्पोंको मारकर अमृत-कुण्डको भूमिपर उठा लाऊँ। [ यदि उससे भी काम न चले तो ] भुवनकोशको फोड़कर सूर्यको बाहर निकाल दूँ और तुरंत ही उस छिद्रपर राहुको रखकर उसे मूँद दूँ [ जिससे फिर सूर्य न आ सके और प्रातःकाल न हो ] ॥ २ ॥ यही नहीं, यदि मैं देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमारोंको बलपूर्वक ले आऊँ तभी प्रभुका अनुचर कहलाऊँ। नीच मृत्युको मूषकके समान पटक दूँ और इस प्रकार सबका पाप काट दूँ [ फिर किसीको मरनेका ही भय न रहे ] ॥ ३ ॥ प्रभो ! आपकी

उन वानरोंमें वह सभी कुछ करनेमें समर्थ हो ॥ १ ॥ इस समय एक वैद्यकी आवश्यकता है।' भगवान्‌की यह आज्ञा सिरपर रखकर बड़भागी वानरराज, जितनी देरमें पलक भी न लगे इतनेहीमें एक वैद्यको उसके घरसहित लेते हुए ही उठा लाये ॥ २ ॥ उस सुषेण नामक वैद्यने विनयपूर्वक कहा—'यदि रात्रिके भीतर ही सञ्जीवनी बूटी मिल सके तो कुँवर जीवित हो सकते हैं।' यह सुनते ही वानरेश्वर हनूमान्‌जी सीतापति भगवान् रामका स्मरण करते हुए उठे और सञ्जीवनी बूटी लेनेके लिये चल दिये ॥ ३ ॥ उन्होंने अपने कालनेमिको मारकर शीघ्र ही द्रोणाचलको देखा और उसे अपने चित्तसे ही पहचान लिया। वहाँ उन्होंने वहाँ-वहाँ बहुत-सी दिव्य ओषधियाँ देखीं, परन्तु वे उस बूटीको न पहचान सके ॥ ४ ॥ तब उन्होंने उस पर्वतको जड़के समान उठा लिया। उस समयके उनके वेगका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा जान पड़ता था मानो गरुडका उद्धार करनेके लिये बड़ी शीघ्रतासे चक्रपाणि भगवान् विष्णु दौड़े जा रहे हों ॥ ५ ॥ इस प्रकार पहाड़को लाकर उन्होंने प्रभुको प्रणाम किया। और वैद्यराजने लक्ष्मणकी चिकित्सा की [ इससे लक्ष्मण तत्काल सचेत हो गये ]। तब कृपालु भगवान् रामने भाईका आलिङ्गन किया और इससे उनके दुःखका सारा भार मिट गया ॥ ६ ॥ रीछ और वानरोंका दल भी ऐसा आनन्दित हुआ मानो उसे संसारका सब सुख मिल गया हो। तत्पश्चात् हनूमान्‌जी उस पर्वतको वहीं-का-वहीं रख आये ॥ ७ ॥ उस समय सम्पूर्ण लोकके सहित परम चतुर भगवान् राम बारंबार अपने सेवककी प्रशंसा करने लगे तब देवताओंने भी

[ उनके मुखसे रामनाम सुन ] उनके समीप जा अपनी भुजाओंमें भरकर उनका आलिंगन किया और उन्हें जीवनदान दिया। लक्ष्मणजी मर्माहत हुए हैं—यह सुनकर तो उन्हें थोड़ा-सा दुःख हुआ, परन्तु हनूमान्‌जीको जीवित देखकर वे परम आनन्दित हुए ॥ ३ ॥ स्वामीकी आज्ञा इधर अयोध्यामें ही रहनेकी है और उधर उनपर युद्धका संकट पड़ा हुआ है—इसपर भरतजीने बहुत कुछ विचार किया; परन्तु उनसे कुछ करते न बना । तुलसीदासजी कहते हैं, [ भरतकी अवस्था उस समय ऐसी थी ] जैसे आकाश फट जाय तो उसे कैसे सिया जाय ! ॥ ४ ॥

[ ११ ]

भरत-सत्रुसूदन बिलोकि कपि चकित भयो है।
राम-रूपन रन जीति अवध आए, कैधौं मोहि भ्रम,
कैधौं काहू कपट ठयो है ॥ १ ॥
प्रेम पुलकि, पहिचानिकै पदपदुम नयो है।
कह्यो न परत जेहि भाँति दुहु भारन
सनेहसों सो उर लाय लयो है ॥ २ ॥
समाचार कहि गहरु भो, तेहि ताप तयो है।
कुधर सहित चढ़ौ बिसिष, बेगि पठयौं, सुनि
हरि हिय गरब गूढ़ उपयो है ॥ ३ ॥
तीरतें उतरि जस कह्यो चहै, गुनगननि जयो है।
धनि भरत ! धनि भरत ! करत भयो,
मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है ॥ ४ ॥
यह जलनिधि लाँघ्यो, मथ्यो, लाँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है।
तुलसिदास रघुबीर-बंधु-महिमाको सिंधु
तरि को कबि पार गयो है ? ॥ ५ ॥

धीरज-धरम धरनिधर-धुरहूतें गुर धुर धरनि धरत को ?
सब सद्गुन सनमानि आनि उर, अघ-औगुन निदरत को ? ॥ २ ॥
सिवहु न सुगम सनेह रामपद सुजननि सुलभ करत को ?
सृजि निज जस-सुरतरु तुलसी कहै, अभिमत फरनि फरत को ? ॥ ३ ॥

हनुमान्‌जी कहने लगे—यदि संसारमें भरतजीका जन्म न हुआ होता तो खाँड़ेकी धाररूप इस दुर्गम मार्गमें चलकर प्रेमव्रतका कौन आचरण करता ? ॥ १ ॥ पृथ्वीमें पर्वतोंके भारसे भी भारी धैर्य और धर्मका बोझा कौन उठाता ? सब सद्गुणोंको सम्मानपूर्वक हृदयमें धारण कर कौन पाप और अवगुणोंका निरादर करता ? ॥ २ ॥ और जो श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका प्रेम शिवजीको भी सुलभ नहीं है उसे कौन सत्पुरुषोंके लिये सुलभ करता, तथा अपने सुयश-रूप कल्पवृक्षको रचकर कौन तुलसीदासके लिये अभिमत फल उत्पन्न करता ? ॥ ३ ॥

१६

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामिकाज संग्राम सुभटसों लोहे जलकारि लरे हैं ॥ १ ॥
सुवन-सोक, संतोष सुमित्रहि, रघुपति-भगति बरे हैं।
छिन छिन गति सुखात, छिनहि छिन हुलसत होत हरे हैं ॥ २ ॥
कपिसों कहति सुभाय, अबके अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर, जद्यपि धनु दुखरे हैं ॥ ३ ॥
'तात ! जाहु कपि संग', रिपुसूदन ठाढ़ कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पत पूरे जनु बिधिबस सुंदर ढरे हैं ॥ ४ ॥
अब अनुजगति लखि पवनज-भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं ॥ ५ ॥

मेंट करि कहियो, कहो यों कठिन-मानस माय ।
'लाल ! लोने लखन-सहित सुललित लागत नाँय' ॥ ४ ॥
देखि बंधु-सनेह, अंब-सुभाउ, लखन कुदाय ।
गयत तुलसी नरनि-श्रासकु पहि नवे तिहुँ नाय ॥ ५ ॥

[ भरतजी कहने लगे—] "हे भगवान्, [illegible] मेरी एक विनय सुनाना । हे कपीश्वर ! तुमसे मैं अधिक क्या कहूँ ? तुम तो स्वभावसे ही सुशिक्षित, सुमति और सुहृद् हो ॥ १ ॥ स्वामीसे मेरी [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

अपने शत्रु रावणको युद्धस्थलमें जीतकर भगवान् राम भाईके साथ विराजमान हैं। इस समय वे सैकड़ों कामदेवोंसे भी सुन्दर जान पड़ते हैं और अपना करकमल धनुष और बाणपर फेर रहे हैं ॥ १ ॥ उनके श्याम शरीरपर पसीनेकी सुन्दर बूँदें और बीच-बीचमें मनोहर रुधिरकण शोभायमान हैं; मानो किसी मरकतमणिके पर्वत-शिखरपर जुगनुओंके समूहमें वीरबहूटियाँ शोभा पा रही हों ॥ २ ॥ उनके चारों ओर घायल वीर बैठे हुए हैं। वे सम्पूर्ण रीछ-वानर बड़े ही प्रसन्न हैं। उस समय प्रभु ऐसे जान पड़ते हैं मानो फूले हुए किंशुक वृक्षोंके बीचमें एक अति विशाल और तरुण तमालवृक्ष हो ॥ ३ ॥ उस समय कमलनयन भगवान् रामने कृपादृष्टिसे देखकर सब मुनि, नाग, देवता और मनुष्योंको निर्भय कर दिया। तुलसीदासजी कहते हैं, यह दुःसह विपत्तिको दूर करनेवाला अनुपम रूप हमारे हृदयकमलमें विराजमान रहे ॥ ४ ॥

## अयोध्यामें प्रतीक्षा

राग आसावरी

[ १७ ]

अवधि भाजु किधौं औरो दिन ह्वैहै।
चढ़ि धौरहर, बिलोकि दपिन दिसि, बूझ धौं पथिक कहाँते आये वै हैं ॥ १ ॥
बहुरि बिचारि हारि हिय सोचति, पुलकि गात लागे लोचन च्वैहैं।
निज बासरनि बरष पुरवैगो बिधि, मेरे तहाँ करम कठिन कृत कैहैं
बन रघुबीर, मातु गृह जीवति, निलज प्रान सुनि सुनि सुख स्वैहैं।
तुलसिदास मो-सी कठोर-चित कुलिस-सालभंजनि को ह्वैहैं ॥ ३ ॥

वे वर्षा, वायु तथा भीषण शीत और घाम सहते हुए बिना वस्त्रके ही पृथ्वीपर पड़ रहते होंगे। वनमें कन्द, मूल और फल-फूल आदि ही खानेको मिलते हैं; और वह भोजन भी उन्हें समयपर खानेको कैसे मिलता होगा ! ॥ २ ॥ जिन्हें देखकर लता और वृक्षादिको भी शोक होगा तथा पक्षी, मृग और मुनियोंके नेत्रोंसे जल चूने लगेगा, मैं उन्हींकी माता हूँ ! भला मुझ-जैसी निष्ठुरहृदया भी कोई कहीं होगी ! ॥ ३ ॥

राग सोरठ

[ १९ ]

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु, काग ! फुरि बाता ॥ १ ॥
दूध-भातकी दोनी दैहौं, सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय-सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं ॥ २ ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ, पाँय परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥३॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकटतें समाचार लै आयो।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो ॥४॥

माता बैठी-बैठी शकुन मनाती है—अरे काक ! सच-सच बता, मेरे बालक कुशलपूर्वक कब घर आ जायँगे ? ॥ १ ॥ जिस समय मैं नेत्र भरकर सीताके सहित राम और लक्ष्मणको देखकर हृदयसे लगाऊँगी उस समय मैं तुझे दूध-भातकी दोना दूँगी और तेरी चोंच सोनेसे मढ़वा दूँगी ॥ २ ॥ फिर वनवासकी अवधिको समीप ही जान माता अत्यन्त आतुर होकर हृदयमें व्याकुल हो

जाती है और किसी ज्योतिषीको बुला, उसके पैरों पड़, प्रेममें मग्न होकर मधुर वाणीसे पूछता है ॥ ३ ॥ इसी समय भरतजीके पाससे कोई रघुनाथजीके आनेका समाचार लेकर आया। तुलसीदासजी कहते हैं, इसके मुखसे भगवान्‌का आगमन सुनते ही [ कौसल्याजीको ऐसी शान्ति मिली ] मानो मरती हुई मछलीको जल मिल गया हो ॥ ४ ॥

राग गौरी

२० ]

छेमकरी ! बलि, बोलि सुबानी।
कुसल छेम सिय-राम-लषन कब ऐहैं, अंब ! अवध रजधानी ॥१॥
ससिमुखि कुंकुम-बरनि सुलोचनि, मोचनि सोचनि बेद बखानी।
देवि ! दया करि देहि दरसफल, जोरि पानि बिनवहिं सब रानी ॥२॥
सुनि सनेहमय बचन, निकट ह्वै, मंजुल मंडल कै मड़रानी।
सुभ मंगल आनंद गगन पुनि अकनि अकनि उर जरनि जुड़ानी ॥३॥
[illegible] मन प्रसन्न, दुख-दसा सिरानी।
[illegible] बलि सगुन सयानी ॥४॥
[illegible] कहानी।
[illegible] बड़ि भानी ॥५॥
[illegible] जाती हूँ। अरी
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

## अयोध्यामें आनन्द

[illegible]

[illegible]

हृदयमें खूब आनन्द बढ़ाया। फिर वे भरत, शत्रुघ्न तथा माताओंसे मिले। उस समय जो अपरिमित प्रेम उनका उसका किस प्रकार वर्णन करूँ? ॥ ६ ॥ मुनिमण्डलने उसी दिन तुरंत अति आनन्दित हो राज्याभिषेककी तैयारी कर दी। तुलसीदासने भी आदरपूर्वक महाराज रघुनाथजीका गुणगान किया है ॥ ७ ॥

## राज्याभिषेक

राग वैतालीय

[ २२ ]

रन जीति रन राउ आए।
सानुज सदल ससीय कुसल आजु, अवध आनंद-बधाए ॥१॥
अरिपुर जारि, उजारि, मारि रिपु, विबुध सुबास बसाए।
धरनि-धेनु, महिदेव-साधु, सबके सब सोच नसाए ॥२॥
दई लंक, थिर थपे बिभीषन, बचन-पियूष पिआए।
सुधा सींचि कपि, कृपा नगर-नर-नारि निहारि जिआए ॥३॥
मिलि गुरु बंधु, मातु, जन, परिजन, भए सकल मन भाए।
हरष-हरष दसचारि बरसके दुख पलमें बिसराए ॥४॥
बोलि सचिव सुचि, सोधि सुदिन, मुनि मंगल-साज सजाए।
महाराज-अभिषेक बरषि सुर सुमन निसान बजाए ॥५॥
दै लै भेंट नृप-अहिप-लोकपति अति सनेह सिर नाए।
पूजि, प्रीति पहिचानि राम आदर अधिक, अपनाए ॥६॥
दान मान सनमानि, आनि रुचि, जाचक जन पहिराए।
गए सोक-सर सूखि, मोद-सरिता-समुद्र गहिराए ॥७॥
प्रभु-प्रताप-रबि अहित-अनंगल-अघ-उलूक-जन ताए।
किये बिसोक हित-कोक-कोकनद, लोक सुजस सुभ छाए ॥८॥

खूब आदर किया और उन्हें अच्छी तरह अपनाया ॥ ६ ॥ फिर याचकोंको, उनकी रुचि देख-देखकर दान और मानसे सन्तुष्ट किया तथा उन्हें वस्त्रादि पहनाये। इससे उनके शोकरूप सरोवर सूख गये तथा आनन्दरूप नदी और समुद्र गम्भीर हो गये ॥ ७ ॥ प्रभुके प्रतापरूप सूर्यके सामने अहित, अमङ्गल और पापरूप उल्लू तथा अन्धकार लीन हो गये, सुहृद्रूप कोक (चकवा-चकवी) एवं कोकनद (कमल) शोकहीन हो गये तथा सम्पूर्ण लोकोंमें उनका सुयश छा गया ॥ ८ ॥ रामचन्द्रजीके राज्यमें सारे लौकिक कार्य मङ्गलमय रहे, सबको सब प्रकारके सुख प्राप्त हुए तथा ब्राह्मण-लोग प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद देकर प्रजाका आनन्द बढ़ाते रहे ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीरामने आश्रमधर्मका विभाग कर लोगोंको पवित्र वेदमार्गपर प्रवर्तित किया। सब लोग धर्मपरायण तथा राम और सीताके चरणोंमें प्रीति करनेवाले थे, मानो साक्षात् राम और सीतासे ही उत्पन्न हुए हों ॥ १० ॥ पृथ्वी कामधेनुरूप तथा वृक्ष कल्पतरुके समान हो गये; विधाता किसीके प्रति विपरीत नहीं रहा। तुलसीदासजी कहते हैं, यह तो उस समयके लोगोंकी बात है, किन्तु इस समय भी जिन्होंने प्रीतिपूर्वक रघुनाथजीके गुण गाये हैं उन्हें वही आनन्द प्राप्त हुआ है ॥ ११ ॥

राग टोड़ी

२३

आजु अवध आनंद-बधावन, रिपु रन जीति राम आए।
सजि सुबिमान निसान बजावत मुदित देव देखन धाए ॥ १ ॥
घर घर चारु चौक चंदन-मनि, मंगल-कलस सबनि साजे।
ध्वज-पताक, तोरन, बितान बर, बिबिध भाँति बाजन बाजे ॥ २ ॥

ॐ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

# गीतावली

## उत्तरकाण्ड

### रामराज्य

राग सोरठ

[ १ ]

बनतें आए राजा राम भए भुआल।
मुदित चौदह भुवन, सब सुख सुखी सब सब काल ॥ १ ॥
मिटे कलुष-कलेस-कुलपन, कपट-कुपथ-कुचाल।
गए दारिद, दोष दारुन, दंभ-दुरित-दुकाल ॥ २ ॥
कामधुक महि, कामतरु तरु, उगल मनिगन लाल।
नारि-नर तेहि समय सुकृती, भरे भाग सुभाल ॥ ३ ॥
बरन-आस्रम-धरमरत, मन बचन बेष मराल।
राम-सिय-सेवक-सनेही, साधु, सुमुख, रसाल ॥ ४ ॥
राम-राज-समाज बरनत सिद्ध-सुर-दिगपाल।
सुमिरि सो तुलसी अजहुँ हिय हरष होत बिसाल ॥ ५ ॥

बनसे आकर महाराज राम भूपति हुए। उनके राज्यमें चौदहों भुवन आनन्दित हो गये और सब लोग सब समय सब प्रकारके सुखोंसे सुखी रहने लगे ॥ १ ॥ सब प्रकारके पाप, क्लेश, कुलक्षय, कपट, कुमार्ग और कुचाल नष्ट हो गये तथा दरिद्रता, दारुण दोष, दम्भ, दुरित और दुष्काल आदिका नाम मिट गया ॥ २ ॥

अँगड़ाने लगा। उनके कुछ उनींदे-से मनोहर नेत्र तथा मुखकी प्रतिभा और शृंगार देखकर अनेकों कामदेव भी हार मानकर भाग गये ॥ २ ॥ उनकी छवि स्वभावसे ही शोभामयी है, उसकी उपमा कोई भी कवि नहीं पा सकता; अतः वे प्रसन्नतापूर्वक उसकी ओर देखते रहते हैं। तुलसीदास कहते हैं, इस प्रकार वे अहर्निश प्रभुके अनूप रूपके प्रेममें मग्न रहते हैं ॥ ३ ॥

राग कल्याण

[ ३ ]

रघुपति राजीवनयन, सोभातनु कोटि मयन,
करुनारस-अयन चयन-रूप भूप, माई।
देखो सखि अतुलित छबि, संत-कंज-कानन रबि,
गावत कल कीरति कबि-कोबिद-समुदाई ॥ १ ॥
मज्जन करि सरजुतीर ठाढ़े रघुबंसबीर,
सेवत पदकमल धीर निरमल चित लाई।
ब्रह्ममंडली-मुनींद्रबृंद-मध्य इंदुबदन
राजत सुखसदन लोकलोचन-सुखदाई ॥ २ ॥
बिथुरित सिररुह-बरूथ कुंचित, बिच सुमन-जूथ,
मनिजुत सिसु-फनि-अनीक ससि समीप आई।
जनु सभीत दै अँकोर राखे जुग रुचिर मोर,
कुंडल-छबि निरखि चोर सकुचत अधिकाई ॥ ३ ॥
ललित भ्रुकुटि, तिलक भाल, चिबुक-अधर-द्विज रसाल,
हास चारुतर, कपोल, नासिका सुहाई।
मधुकर जुग पंकज बिच, सुक बिलोकि नीरजपर
लरत मधुप-अवलि मानो बीच कियो जाई ॥ ४ ॥

[ यहाँ भगवान्‌का मुख चन्द्रमा है, केशकलाप तमालवृक्ष हैं, उनमें गुँथे हुए फूल उनके नक्षत्र हैं और कानोंके कुण्डल दो मोर हैं ] ॥ ३ ॥ उनकी भृकुटि अत्यन्त सुन्दर है, माथेपर तिलक शोभायमान है तथा चिबुक, अधर और दन्तावली बड़ी ही सरस है। उनकी हँसी बड़ी ही मनमोहिनी तथा कपोल और नासिका बड़े ही सुघड़ हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो [ नेत्ररूप ] कमलोंपर [ भृकुटिरूप ] दो भौंरे बैठे हैं; तथा [ मुखरूप ] पङ्कजपर [अलकावलीरूप] भृङ्गोंको लड़ते देख [नासिकारूप ] शुकने उनका बीच-बचाव किया हो ॥ ४ ॥ भगवान्‌के शरीरपर अति सुन्दर और विशद पीताम्बर तथा हृदयपर तुलसी एवं विविध प्रकारके पुष्पोंसे अनेक प्रकारसे बनायी हुई वनमाला शोभायमान है। जो ऐसी मालूम होती है मानो [ श्यामशरीररूप ] तमालवृक्षके बीचमें [ वनमालारूप ] तिरंगे शुकपक्षियोंकी मनोहर पंक्ति हो और वह [ पीताम्बररूप ] सुवर्णपाशके भीतर पड़ जानेसे उड़ न सकती हो ॥ ५ ॥ जो रामरूप भ्रमर श्रीशङ्करके हृदयकमलमें अहर्निश निवास करते हैं और जो छलहीन पुरुषोंके मनमन्दिरमें निरन्तर बसे रहते हैं वे सकल तापापहारी अवधविभूषण परमानन्दमूल श्रीरघुनाथजी तुलसीदासपर सर्वदा प्रसन्न रहें ॥ ६ ॥

[ ४ ]

राजत रघुवीर धीर, भंजन भव-भीर, पीर-
हरन सकल सरजुतीर निरखहु, सखि! सोहैं।
संग अनुज मनुज-निकर, दनुज-बल-बिभंग-करन,
अंग अंग छबि अनंग अगनित मन मोहैं ॥ १ ॥

कामदेवोंका मन मोह रही है ॥ १ ॥ उनके सुषमा, शील और आनन्दके भण्डार मनोहर नेत्र देखो तथा काली और घुँघराली अलकें निहारो। अहा! इनके मनोहर कुण्डल और नासिका तो हमारे चित्तोंको अपनेमें लगाये लेते हैं; मानो चन्द्रबिम्बके मध्यमें कमल, मत्स्य और खञ्जन पक्षीको देखकर उन्हें अपने सजातीय जान भ्रमर, मकर और शुक पक्षी आये हों [ यहाँ मुख चन्द्रमण्डल है, नेत्र कमल, मत्स्य और खञ्जन पक्षी हैं, अलकें भ्रमर हैं, कुण्डल मकर हैं तथा नासिका शुक है ] ॥ २ ॥ भगवान्‌के बड़े ही मनोहर कपोल हैं, अत्यन्त विशाल भालपर तिलक झलक रहा है तथा [ मुखचन्द्रपर ] चन्द्रमाके चिह्न [ मेचकताई ] के समान अत्यन्त मनोहर बाँकी भ्रुकुटियाँ हैं। प्रभुके अरुण अधर, सुमधुर बोल, विद्युच्छटाके समान दाँतोंकी दमक, मनोहर मुसकान तथा तिरछी चितवन चित्तको उल्लसित कर देती है ॥ ३ ॥ भगवान्‌का कण्ठ शंखके समान है, भुजाएँ लंबी-लंबी हैं, तथा हृदयमें मनोहर मुक्तावलीके सहित नवीन तुलसीकी माला शोभायमान है। उस छविको योगिजन हृदयमें इस प्रकार देखते हैं मानो हंसोंकी पंक्तिके सहित कलिन्दनन्दिनी यमुनाजी इन्द्रनीलमणिके शिखरको स्पर्श करती हुई नीचेको गिरती हुई अत्यन्त शोभा पा रही हों [ यहाँ मोतियोंकी माला हंसोंकी पंक्ति है, तुलसीकी माला कालिन्दी है और भगवान्‌का कंठ इन्द्रनीलमणिका शिखर है ] ॥ ४ ॥ अरी आली! प्रभुका जो महामनोहर नवीन एवं दिव्य दुकूल उपरना है वह सुन्दर चम्पक पुष्पोंका समूह तो नहीं है? अथवा वह विद्युत्कलाप किंवा सुवर्णका समूह है? भगवान्‌का सौन्दर्यसमुद्र शरीर, जो

स्रवन कुंडल विमल गंड मंडित चपल,
कलित कलकांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी।
जुगल कंचन-मकर मनहु विधुकर मधुर
पियत पहिचानि करि सिंधुकीरति भनी ॥ ५ ॥
उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक,
माल सुविसाल चहुँ पास बनि गजमनी।
न्याम नव जलदपर निरखि दिनकर-कला
कौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन-अनी ॥ ६ ॥
मंदिरनिपर खरी नारि आनँद-भरी,
निरखि बरषहिं विपुल कुसुम कुंकुम-कनी।
दास तुलसी राम परम करुनाधाम,
काम-सतकोटि-मद हरत छवि आपनी ॥ ७ ॥

अरी सखि! देख आज रघुनाथजीकी कैसी शोभा बनी है! उनका शरीर नीलमेघके समान कान्तिमान् तथा सम्पूर्ण लोकोंका आभूषण है, वे बिजलीकी छटाको छीननेवाला सुन्दर पीताम्बर पहने हुए हैं ॥ १ ॥ अरी सजनी! देख, कोसल राजकुँवर रघुनाथजी सरयूमें स्नान कर साथमें बहुत-से साधुजनोंको लिये मत्त गजराजकी चालसे राजमहलको आ रहे हैं। उनके हृदयमें दीनोंके प्रति प्रेम, कृपा और अत्यन्त कोमलता है तथा उनकी कटि और ठवनि सिंहके समान है ॥ २ ॥ उनके मुखमण्डलपर घने, चिकने, टेढ़े और सुहावने बाल बिखरे हुए हैं; उन्हें परम चतुर रघुनाथजी हाथोंसे सँवारते हैं। उससे ऐसी सरस शोभा उत्पन्न होती है मानो मनोहर सर्पशिशुओंका समूह चन्द्रमासे अमृतके लिये झगड़ रहा हो

[ ६ ]

आजु रघुवीर-छवि जात नहि कछु कही।
सुभग सिंहासनासीन सीतारवन,
भुवन-अभिराम, बहु काम सोभा सही ॥ १ ॥
चारु चामर-व्यजन, छत्र-मनिगन विपुल,
दाम-मुकुतावली-जोति जगमगि रही।
मनहुँ राकेस सँग हंस-उडुगन-बरहि
मिलन आए हृदय जानि निज नाथ ही ॥ २ ॥
मुकुट सुंदर सिरसि, भालवर तिलक-भ्रू,
कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही।
मनहुँ हरडर जुगल मारध्वजके मकर
लागि स्रवननि करत मेरुकी बतकही ॥ ३ ॥
अरुन-राजीव-दल-नयन करुना-अयन,
बदन सुषमासदन, हास अघ-तापही।
विविध कंकन, हार, उरसि गजमनि-माल,
मनहुँ बग-पाँति जुग मिलि चली जलदही ॥ ४ ॥
पीत निरमल चैल, मनहुँ मरकत सैल,
पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहजही।
ललित सायक-चाप, पीन भुज बल अतुल
मनुजतनु दनुजबन-दहन, मंडन-मही ॥ ५ ॥
जासु गुन-रूप नहि कलित, निरगुन सगुन,
संभु, सनकादि, सुक भगति दृढ़ करि गही।
दास तुलसी राम-चरन-पंकज सदा
बचन मन करम चहै प्रीति नित निरबही ॥ ६ ॥

शुकदेवजीने भी जिनके भक्तिभावको ही दृढ़ करके पकड़ा है उन भगवान् रामके चरणकमलोंमें तुलसीदास मन, वचन और कर्मसे सदा प्रीतिका ही निर्वाह चाहता है ॥ ६ ॥

[ ७ ]

राम राजराजमौलि मुनिवर-मन-हरन, सरन-
लायक, सुखदायक रघुनायक देखौ री।
लोक-लोचनाभिराम, नीलमनि-तमाल-स्याम,
रूप-सील-धाम, अंग छबि अनंग को री? ॥ १ ॥
भ्राजत सिर मुकुट पुरट-निरमित मनि-रचित चारु,
कुंचित कच रुचिर परम, सोभा नहिं थोरी।
मनहुँ चंचरीक-पुंज कंजबृंद प्रीति लागि
गुंजत कल गान तान दिनमणि रिझयो री ॥ २ ॥
अरुन कंज-दल-बिसाल लोचन, भ्रू-तिलक भाल,
मंडित स्रुति कुंडल बर सुंदरतर जोरी।
मनहुँ संबरारि मारि, ललित मकर-जुग बिचारि,
दीन्हें ससिकहँ पुरारि, भ्राजत दुहुँ ओरी ॥ ३ ॥
सुंदर नासा-कपोल, चिबुक, अधर अरुन, बोल
मधुरे, दसन राजत जब चितवत मुख मोरी।
कंज-कोस भीतर जनु कंजराज-सिखर-निकर,
रुचिर रचित बिधि बिचित्र तड़ित-रंग बोरी ॥ ४ ॥
कंबुकंठ, उर बिसाल तुलसिका नवीन माल,
मधुकर बर-बास-बिबस, उपमा सुनु सो री!
जनु कलिंदजा सुनील सैलतें धसी समीप,
कंद-बृंद बरषत छबि मधुर घोरि घोरी ॥ ५ ॥

सुन्दर हैं तथा उनके बोल अत्यन्त मीठे हैं । जिस समय वे मुख मोड़कर निहारते हैं उस समय उनके दाँत ऐसे शोभायमान होते हैं जैसे किसी कमलकोशके भीतर विधाताद्वारा बिजलीके रंगमें डुबोकर रचे हुए अति सुन्दर पद्मरागके शिखर विराजते हों ॥ ४ ॥ अरी सखि ! प्रभुके कम्बुकण्ठ तथा विशाल वक्षःस्थलपर जो नवीन तुलसीकी माला है और उसकी सुहावनी सुगन्धके वशीभूत होकर उसपर जो भौंरे गुंजार रहे हैं उनकी उपमा तो सुन । [ वे ऐसे जान पड़ते हैं ] मानो किसी नीलशिखरसे गिरती हुई कालिन्दीके समीप मेघवृन्द गरज-गरजकर मधुर छवि बरसा रहे हों [ यहाँ भगवान्‌का श्याम शरीर नीलशिखर है, तुलसीकी माला कालिन्दी है, उसपर गुंजारते हुए भौंरे मेघ हैं उनका शब्द गरजन है तथा उनके मुखसे जो फूलोंका पराग झड़ता है वही छविकी वर्षा करना है ] ॥ ५ ॥ प्रभुके श्याम शरीरपर अत्यन्त निर्मल पीताम्बर सुशोभित है, मानो किसी नीलमेघने अपनी शोभाके लिये बहुत अनुनय-विनय करके बिजलीको रख छोड़ा हो । अरी ! इस सगुण वेषमें प्रकट हुआ यह निर्गुण ब्रह्म नेत्रोंका परम लाभ है, तुम पलक मारना छोड़कर इसे देखो और अपने जीवनको सफल हुआ समझो ॥ ६ ॥ देखो सुन्दरी सीताके सहित शोभायमान कृपानिधान भगवान् राम अपने सेवकोंको सुख देते हैं और अपनी दृष्टि डालते ही चित्तको चुरा लेते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं, इस अमित रूपका वर्णन करते-करते श्रुति और शेषजी भी चकित हो गये हैं तथा इनकी छविको देखकर शारदाकी बुद्धि भी चकित हो गयी है ॥ ७ ॥

कहते हैं, उसका दर्शन करनेवाले उसे देखते ही सुखी हो जाते हैं ॥ ५ ॥

[ ९ ]

सखि ! रघुवीर-मुखछवि देखु ।
चित्त-भीति सुप्रीति-रंग सुरूपता अवरेखु ॥ १ ॥
नयन-सुषमा निरखि नागरि ! सफल जीवन लेखु ।
मनहुँ विधि जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन मेखु ॥ २ ॥
भ्रुकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर-कुंकुम-रेखु ।
भ्रमर द्वै रविकिरनि ल्याए करन जनु उनमेखु ॥ ३ ॥
सुमुखि ! केस सुदेस सुंदर सुमन-संजुत पेषु ।
मनहुँ उडुगन-निवह आए मिलन तम तजि द्वेषु ॥ ४ ॥
स्रवन कुंडल मनहुँ गुरु-कवि करत वाद विसेषु ।
नासिका, द्विज, अधर जनु रह्यो मदनु करि बहु वेषु ॥ ५ ॥
रूप बरनि न सकत नारद-संभु, सारद-सेषु ।
कहै तुलसीदास क्यों मतिमंद सकल नरेषु ॥ ६ ॥

अरी सखि ! तू रघुनाथजीके मुखकी छवि देख । तू उनकी उस सुन्दरताको अपनी चित्तरूप भित्तिपर सम्यक् प्रीतिरूप रंगसे अंकित कर ले ॥ १ ॥ अरी आली ! प्रभुके नेत्रोंकी सुन्दरता देखकर तू अपने जीवनको सफल जान । वे तो ऐसे जान पड़ते हैं मानो नेपराशिकी पूर्णिमाके चन्द्रमामे विधाताने दो कमल बना दिये हो ॥ २ ॥ भगवान्‌के भ्रुकुटियुक्त विशाल भालपर कुंकुमकी रेखाएँ ( तिलक ) शोभायमान है, मानो भ्रमरगण नेत्ररूप कमलोंके विकासके लिये ] सूर्यकी दो किरणे ले आये हो ।. ३ ॥ अरी सुमुखि ! प्रभुके मनोहर मस्तकपर सुन्दर फूलोंके महिन उनका

अनुपम है, उनके लाल-लाल ओठोंमें सेत हासकी आभा तो देखो [वह तो ऐसी जान पड़ती है] मानो चन्द्रमाकी किरण कमलमें निवास करना चाहती हो; किन्तु उसका विचार निश्चित न होनेके कारण वह बार-बार प्रकट होती एवं छिप जाती है ॥ २ ॥ प्रभुकी सुघड़ नासिका मानो तोतेकी सुन्दर चोंच है। उसे देखकर चित्त अपार आश्चर्यसे चकित हो जाता है। अरे चतुर चित्त! उनके अनेक कोमल तथा सुहावने और मनोहर बोलोंपर रीझकर तू अपनेको निछावर कर दे ॥ ३ ॥ देखो, इनके नेत्रकमल, कुटिल केश, कुण्डल, भृकुटि और सुन्दर ललाटपर तिलक सोनेके सार हैं! मानो कामदेव प्रभुके रूपपर मोहित हो जानेके कारण अपनी पताका, मकर, धनुष और बाण भूलकर चला गया हो ॥ ४ ॥ भगवान्‌के रूपका वेद, शेष, शारदा, शुकदेव और भगवान् शङ्कर भी वर्णन करते-करते पार नहीं पाते। फिर, कहो, अत्यन्त मन्दमति, मूर्ख, कठोरहृदय और गँवार तुलसीदास उसे किस प्रकार कह सकता है! ॥ ५ ॥

राग ललित

१२

आज रघुपति-मुख देखत लागत सुख,
सेवक सुलभ, सोभा सरद-ससि सिहाई।
दसन-बसन लाल, बिसद हास रसाल
मानो हिमकर-कर राते राजीव मनाई ॥१॥
अरुन नैन बिसाल, ललित भृकुटि, भाल,
तिलक, चारु कपोल, चिबुक-नासा सुहाई।
बिपुल कुटिल कच, मानहु मधु लालच अलि
नलिन-जुगल उपर रहे लोभाई ॥२॥

रुचिर पलक लोचन जुग तारक स्याम, अरुन सित कोए।
जनु अलि नलिन-कोसमहँ बंधुक-सुमन सेज सजि सोए॥३॥
बिलुलित ललित कपोलनिपर कच मेचक कुटिल सुहाए।
मनो बिधुमहँ बनरुह बिलोकि अलि बिपुल सकौतुक आए॥४॥
सोभित स्रवन कनक-कुंडल कल लंबित बिपि भुजमूले।
मनहुँ केकि तकि गहन चहत जुग उरग इंदु प्रतिकूले॥५॥
अधर अरुनतर, दसन-पाँति वर, मधुर मनोहर हासा।
मनहुँ सोन सरसिजमहँ कुलिसनि तड़ितसहित कृत बासा॥६॥
चारु चिबुक, सुकतुंड बिनिंदक सुभग सुउन्नत नासा।
तुलसिदास छबिधाम राममुख सुखद, समन भवत्रासा॥७॥

ऐ मेरे चतुर चित्त! तू प्रातःकाल होते ही रघुनाथजीके मुख-की शोभा निहारा कर। इससे तेरे विवेकरूपी नेत्र निर्मल, सफल और शीतल हो जायँगे॥१॥ भगवान्‌के विशाल भालपर बाँकी भ्रुकुटियाँ हैं और उनके बीचमें तिलककी मनोहर रेखा विराजमान है। मानो कामदेवने [ अलकावलीरूप ] अन्धकारको ताककर [ भ्रुकुटियुगलरूप ] मरकतमणिके धनुषपर [ तिलकरूप ] दो सुवर्ण-मय बाण चढ़ाये हों॥२॥ सुन्दर पलकयुक्त नेत्रोंमें दो श्यामवर्ण तारे तथा श्वेत और रक्तवर्ण कोये हैं. मानो कमलकोशमें मुंदे हुए दो भौंरे बन्धूक पुष्पकी शय्या बनाकर उसपर शयन कर रहे हों॥३॥ प्रभुके मनोहर कपोलोंपर लटकती हुई काली और घुँघराली अलकें ऐसी शोभायमान हैं मानो [ मुखरूप चन्द्रमामें नेत्ररूप ] कमलकुसुम देखकर कुतूहलवश बहुत-से भौंरे इकट्ठे हो गये हों॥४॥ भगवान्‌के कानोंमें दोनों भुजाओंके मूलभागतक लटकते हुए सुवर्णके

दसमुख-बिबस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना हैं।
सुबस बसे गावत जिन्हके जस अमर-नाग-नर-मुमुखि सनाहैं ॥७॥
जे भुज बेद-पुरान, सेष-सुक-सारद सहित सनेह सराहैं।
कलपलताहुकी पलपलता बर, कामदुहहुकी कामदुहा हैं ॥ ८ ॥
सरनागत-आरत-अनतनिको दै दै अभयपद ओर निबाहैं।
करि आईं, करिहैं, करती हैं तुलसिदास दासनिपर छाहैं ॥ ९ ॥

श्रीरघुनाथजीकी भुजाओंका स्मरण करते ही संसारसमुद्र, जो कि बड़ा ही दुर्गम है, सुगम हो जाता है। फिर कोई तो उसे लाँघ जाते हैं और कोई यहाकर पार कर लेते हैं ॥१॥ [ वे भुजाएँ भगवान्‌के शरीरमें ऐसी शोभित हैं ] मानो अति सुन्दर श्यामशरीररूप पर्वतसे दो यमुनाजीकी धाराएँ निकली हैं; जो बलरूप अथाह एवं निर्मल जलसे भरी हुई हैं तथा शृंगाररूप सूर्यसे उत्पन्न हुई हैं ॥ २ ॥ बाण उनकी धाराएँ हैं, धनुष ही किनारा है, आभूषण जलचर जन्तु हैं और घाट्टियाँ (अँगुलियोंके बीचके सन्धिस्थान ) भँवर हैं। विजयकी विरुदावली ही उसमें तरंगरूपसे शोभायमान है तथा उसमें करारूप कमलोंकी शोभा हो रही है ॥ ३ ॥ वे मानो सम्पूर्ण लोकोंके कल्याणरूप भवनके द्वारकी दो विशाल और शोभायमान खड़ी लकड़ियाँ ( खंभे अर्थात बाजू ) हैं, जो विश्वामित्रजीके यज्ञमें ऋषियोंद्वारा पूजित हुईं तथा जिन्होंने जनकजी, गणेशजी, भगवान् शंकर और पार्वतीजीसे पूजित होकर सबकी कामनाएँ पूर्ण की हैं ॥ ४ ॥ इन्हींने महादेवजीका धनुष तोड़कर जानकीजीसे विवाह किया, जिससे सब राजालोग मारे शर्मके बेहाल हो गये तथा जिन्होंने कृपाकी ओर कभी दृष्टिपात भी नहीं किया, उन परशुराम-

सेवहिं सुचि मुनि-मृगविहग मन-गुरित नयेरय पार।
सुनिरत हिय हुलसत तुलसी अनुराग उमगि गुन गाए ॥ ४ ॥

श्रीजनकजीके सुकृतरूप कल्पवृक्ष सीताजी साक्षात् विचार ही किये जानेवाले कल्पवृक्ष ही हैं। वे सीताजीके सेवकरूप पक्षियोंके आश्रय दिये हुए तथा लक्ष्मणजीके दुःखरूप घामको सुन्दर बादलके समान हैं ॥ १ ॥ श्यामवर्ण, महामोहरूप एवं महाकठिन शरीर ही उनका मूल है, सुकृतियोंके मनोहर मनोरथ ही उनके पत्ते हैं, नव पुष्प हैं तथा चतुरोंके स्मरणमात्रसे ही उनके सब फलोंके देनेवाले सुफल हैं ॥ २ ॥ उनके जड़ स्थिर, शीतरहित, अमलिन ( दुःखरहित ), कोमल, अति सुन्दर और छालरहित हैं। वे नव प्रकारके दुःख, पाप, रोग, मोह, शोक, मद, वर और मत्सर आदिके नष्ट करनेवाली हैं ॥३॥ पक्षिरूप सिद्ध मुनिजनरूप भौंरे और तपी मनमें प्रसन्न होकर आनन्दरूप शहद पीते हुए उनका सेवन करते हैं। उनका स्मरण करनेसे तुलसीदासके भी हृदयमें आनन्द होता है और उसके प्रेमने उमंगकर उसने उनके गुण गाये हैं ॥ ४ ॥

१५

पनवरत मुनिवर बन्दत तीरथराज विराजै।
संकर-हृदय-सरोज-भृङ्गवर प्रेम-अगाधबट भ्राजै ॥ १ ॥
स्यामवरन पदपीठ, अरुन दल, ललित त्रिवेनी नवबेनी।
जनु पबिसुतासुरारि-सुरसरि मिलि चली ललित त्रिभवनी ॥ २ ॥
बंकुस-कुलिस-कमल-धुज सुंदर भँवर तरंगबिलासा।
नखदुति सुरसज्जन, मुनिजनमन मुदित मनोहर बासा ॥ ३ ॥
बिधु बिस्वजस-अमल-जोगजल, बिधुतप, बिधु तनु त्यागे।
सब सुख सुकृत सकल तुलसी मनु पदनखचंद अनुरागे ॥ ४ ॥

कंबुग्रीव, छविसींव, चिबुक, द्विज, अधर, कपोल, बोल भय-मोचन।
नासिक सुभग, कृपापरिपूरन तरुन अरुन राजीव बिलोचन ॥६॥
कुटिल भ्रुकुटिवर, भाल तिलक रुचि, सुचि सुंदरता स्रवन-बिभूषन
मनहुँ मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहि चाप-सर-मकर अदूषन ७
कुंचित कच, कंचन-किरीट सिर, जटित ज्योतिमय बहुबिधि मनिगन
तुलसिदास रबिकुल-रबि-छबि कबि कहि न सकत सुक-
संभु-सहसफन ॥८॥

अरे मन ! तू तनिक रघुनाथजीका रूप तो देख। यह स्यामसुन्दर शरीर तो सम्पूर्ण लोकोंके नेत्रोंको सुख देनेवाला और नखसे सिखतक शोभायमान है ॥ १ ॥ इनके चरणतलके [ वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल—ये ] चारों मनोहर चिह्न अपने भक्तजनोंको पहचानकर उन्हें आग्रहपूर्वक [ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये ] चारों फल देते हैं। प्रभुके नख ऐसे शोभायमान हैं मानो कनक-दलोंके ऊपर बालसूर्यकी प्रभासे अनुरञ्जित हिमकण हों ॥ २ ॥ इनकी जंघा और जानु कदलीकी याद दिलाती है, कमरमें किंकिणी तथा सुहावना पीताम्बर है। इनके सुन्दर तूणीर, नाभि, रोमावली और उदरदेशकी त्रिवलीकी तो कोई उपमा ही नहीं बनती ॥ ३ ॥ इनके वक्षःस्थलमें भृगुजीका चरणचिह्न, पदिक, मोतियोंकी माला और केसरका अनुलेपन ऐसा शोभायमान है मानो सूर्य और कमलने आपसमें मिलकर अपने प्रेम तथा महान् सुयशको प्रकट किया है ॥ ४ ॥ वे अपनी विशाल भुजाओंमें मनोहर धनुष-बाण धारण किये हैं, इनके हाथोंमें महामूल्यवान् कंकण और केयूर हैं तथा इनके शरीरपर बिजलीकी छटाको छीननेवाला निर्मल दुकूल तथा पवित्र

काम-तून-तल-सरिस जानु जुग, उरु करिकर, करभनि
बिलखावति।
रसना रचित रतन चामीकर, पीत बसन कटि कसे
सरसावति॥ ५॥
नाभी सर, त्रिवली निसेनिका, रोमराजि सैवल-छवि पावति।
उर मुकुतामनि-माल मनोहर मनहु हंस-अवली उड़ि आवति॥ ६॥
हृदय पदिक, भृगु-चरन-चिह्नवर, बाहु बिसाल जानुलगि
पहुँचति।
कल केयूर पूर कंचन-मनि, पहुँची मंजु कंजकर सोहति॥ ७॥
सुजव सुरेख सुनख अंगुलिजुत सुंदर पानि मुद्रिका राजति।
अंगुलित्रान-कमान-बानछवि सुरनि सुखद, असुरनि उर
सालति॥ ८॥
स्याम सरीर सुचंदन-चरचित, पीत दुकूल अधिक छवि
छाजति।
नील जलदपर निरखि चंद्रिका दुरनि त्यागि दामिनि जनु
दमकति॥ ९॥
यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति।
सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका, कंबु-कंठ-सोभा मन मानति॥१०॥
सरद-समय-सरसीरुह-निंदक मुख-सुषमा कछु कहत न
बानति।
निरखतही नयननि निरुपम सुख, रविसुत-मदन-सोम-
दुति निदरति॥११॥
अरुन अधर, द्विजपाँति अनूपम, ललित हँसनि जनु मन
आकरषति।
बिद्रुम-रचित बिमान मध्य जनु सुरमंडली सुमन-चय बरसति॥१२॥

है, टखने गूढ़ ( छिपे हुए ) हैं तथा जंघाएँ कदलीस्तम्भको जीतनेवाली हैं ॥ ४ ॥ दोनों घुटने कामदेवके तरकसके निम्नभागके समान हैं, सुघड़ जाँघें हाथीकी सूँड और हाथीके बच्चेका मान मर्दन करनेवाली हैं । कमरमें सुवर्ण और मणियोंकी बनी हुई करधनी तथा उसपर कसा हुआ पीताम्बर सुशोभित हो रहा है ॥ ५ ॥ प्रभुकी नाभि मानो सरोवर है, उदरकी तीन रेखाएँ उसकी सीढ़ियाँ हैं तथा रोमावली सेवारकी छवि पाती है । हृदयमें जो मोतियोंकी मनोहर माला पड़ी हुई है वह मानो [ उस नाभि-सरोवरपर ] हंसोंकी पंक्तियाँ उड़-उड़कर आ रही हैं ॥ ६ ॥ भगवान्‌के वक्षःस्थलपर पदिक तथा मनोहर भृगुलताका चिह्न है, उनकी लंबी-लंबी भुजाएँ घुटनोंतक लटकती हैं, उनमें सुवर्ण और मणियोंके सुन्दर बाजूबंद हैं तथा करकमलोंमें मनोहर पहुँचियाँ शोभायमान हैं ॥ ७ ॥ शुभ यव, शुभ रेखा, सुन्दर नख और मनोहर अँगुलियोंसे युक्त सुन्दर हाथोंमें अँगूठी शोभा पा रही है तथा अङ्गुलित्राण, धनुष और बाणोंकी छवि देवताओंको सुख देती है तथा असुरोंके हृदयमें शूल उत्पन्न करती है ॥ ८ ॥ मञ्जुल चन्दनचर्चित श्याम शरीरमें पीताम्बर बड़ा ही छविमय जान पड़ता है, मानो नील मेघपर चन्द्रमाकी चाँदनी देखकर बिजली छिपना छोड़कर ( स्थिर हो ) दमक रही हो ॥ ९ ॥ गलेमें पवित्र यज्ञोपवीत शोभायमान है, जत्रु ( गलेकी धनुषाकार हड्डी ) गूढ़ ( छिपी हुई ) है, कन्धे स्थूल और विस्तृत हैं, कुकाटिका ( घाँटी ) सुघड़, पुष्ट एवं उन्नत है तथा शङ्खसदृश ( त्रिरेखायुक्त ) गलेकी शोभा मनको प्रिय जान पड़ती है ॥ १० ॥ शरत्कालीन कमलकुसुमोंकी

## राम-हिँडोला

राग मलार

[ १८ ]

आली री ! राघोके रुचिर हिंडोलना झूलन जैए ॥
फटिक-भीति सुचारु चहुँ दिसि, मंजु मनिमय पौरि।
गच काँच लखि मन नाच सिखि जनु, पाँवसर-सुफँसौरि ॥
तोरन-बितान-पताक-चामर-धुज-सुमन-फल-घौरि
प्रतिछाँह-छबि कवि-साखि दै प्रति सों कहै गुरु हौं रि ॥१॥
मदन-जयके खंभ-से रचे खंभ सरल बिसाल।
पाटीर-पाटि बिचित्र भँवरा बलित, बेलन लाल ॥
डाँड़ो कनक कुंकुम-तिलक-रेख-सी मनसिज-भाल।
पटुली पदिक रति-हृदय जनु कलधौत कोमल माल ॥२॥
उनये सघन घनघोर, मृदु झरि सुखद सावन लाग।
बगपाँति, सुरधनु, दमक दामिनि, हरित भूमि-बिभाग ॥
दादुर मुदित, भरे सरित-सर, नहि उमग जनु अनुराग।
पिक-मोर-मधुप-चकोर-चातक-सोर उपबन बाग ॥३॥
सो सनौ देखि सुहावनो नवसत सँवारि सँवारि।
गुन-रूप-जोबन-सींव सुंदरि चलीं झुंडनि झारि ॥
हिंडोल-साल बिलोकि सब अंचल पसारि पसारि।
लागीं असीसन राम-सीतहि सुख-समाजु निहारि ॥४॥
झूलहिं, झुलावहिं, ओसरिन्ह गावैं सुहो, गौडमलार।
मंजीर-नूपुर-बलय-धुनि जनु कान-करतल-तार ॥
अति मुदित चमकन मुखनि, बिथुरे बिकुर, बिलुलित हार।
तन तड़ित उडुगन अरुन बिधु जनु करत ब्योम-बिहार ॥५॥

हिय हरषि, बरषि प्रसून निरखति बिबुध-तिय तृन तूरि।
आनंद-जल लोचन, मुदित मन, पुलक तनु भरिपूरि॥
सब कहहिं, अबिचल राज नित, कल्यान-मंगल भूरि।
चिर जियौ जानकिनाथ जग तुलसी-सजीवनिमूरि॥६॥

अरी आली! रघुनाथजीके मनोहर हिंडोलेमें झूलनेके लिये चलो। उसके चारों ओर स्फटिकमणिकी मनोहर भीतें हैं तथा मणियोंके सुन्दर दरवाजे हैं। उसकी काँचकी गचें देखकर मन मयूर-के समान नाचने लगता है, मानो वह कामदेवका कड़ा ही हो। उस हिंडोलेमें जो वंदनवार, वितान, पताका, चमर, ध्वजा तथा पुष्प और फलोंकी आकृतियाँ बनायी गयी हैं उनकी परछाँही मानो कविको साक्षी देकर अपने बिम्बोंसे [illegible] अनुरूप उनकी प्रतिछाया मणि और काँचकी गचमें प्रतिबिम्बित [illegible] कहती [illegible] कि हम उसमें बसी हैं ॥ १ ॥ उस हिंडोलेमें [illegible] और बड़े बड़े खम्भे बनाये [illegible] उसमें [illegible] [illegible]

मोर, भौंरे, चकोर और चातकोंका शोर हो रहा है ॥ ३ ॥ वह सुहावना नृत्य देखकर रूप, गुण और यौवनकी सीमारूप बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ सोलहों शृंगार करके दल बाँधकर चलीं और उस हिंडोलेकी शोभा देख अपने अञ्चल फैला-फैलाकर राम और सीताको—उनका सुख-समाज देखकर—आशीर्वाद देने लगीं ॥ ४ ॥ फिर वे सोहनी, गौड मलार आदि राग गाती हुई बारी-बारीसे झूलने और झुलाने लगीं। उस समय जो मंजीर, नूपुर और कंकणोंकी ध्वनि होती थी वह कामदेवके हाथोंकी ताल-सी जान पड़ती थी। [ झूलते समय श्रमकी अधिकताके कारण ] उनके मुखपर छायी हुई पसीनेकी बूँदें बिखरे हुए बाल और उलझे हुए हार ऐसे जान पड़ते थे मानो अन्धकार, बिजली, नक्षत्रगण, बालसूर्य और चन्द्रमा आकाशमें विहार कर रहे हों [ यहाँ बिखरे हुए बाल अन्धकार हैं, अङ्गकी कान्ति बिजली है, पसीनेकी बूँदें नक्षत्रगण हैं, हार बालसूर्य हैं, तथा मुख चन्द्रमा है ] ॥ ५ ॥ इस समय देवाङ्गनाएँ हृदयमें हर्षित हो, फूलोंकी वर्षा कर [ नजर न लग जाय इसलिये ] तिनका तोड़ती हुई यह सब लीला देख रही हैं। उनके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु छाये हुए हैं, मन प्रसन्न है तथा सम्पूर्ण शरीर अत्यन्त पुलकित हो रहा है। वे सब यही कह रही हैं कि यह अत्यन्त कल्याण और मंगलमय राज्य सर्वदा अविचल रहे तथा तुलसीदासके जीवनमूल जानकीनाथ भगवान् राम संसारमें दीर्घजीवी हों ॥ ६ ॥

## अयोध्याकी स्वर्गीयता

### वर्षा-वर्णन

### राग सूहो

१८

कोसलपुरी सुहावनी सरि सरजूके तीर।
भूपावली-मुकुटमनि नृपति जहाँ रघुबीर॥

वह पुरी यों तो सभी ऋतुओंमें सुखदायिनी है, परन्तु वर्षा ऋतुमें तो वह बड़ी ही सुहावनी जान पड़ती है। उस समय वहाँकी हरी-भरी रमणीय भूमि देखते ही बलपूर्वक चित्तको हर लेती है। चारों ओर बीरबहूटियाँ सुशोभित होती हैं, मेढकोंकी ध्वनि सुनायी देती है तथा मेघ मन्द-मन्द गरजकर वर्षा करते हैं और उनका शब्द सुन-सुनकर मयूर बोलने लगते हैं। उस समय चातक, मोर, कोकिल, शुक और कबूतर आदि बहुत-से पक्षी बोलते रहते हैं तथा बालकोंके पाले हुए अनेकों पक्षी कूजते और सुहावनी उड़ान भरते हैं। आकाशमें बगुलोंकी पंक्ति और इन्द्रधनुष तथा दसों दिशाओंमें बिजली शोभायमान होने लगती है। उस समय आकाश और नगरकी वह अतुलित शोभा देखकर मुनियोंके मन भी मोहित हो जाते हैं॥ २॥

गृह गृह रचे हिंडोलना, महि गच काँच सुढार।
चित्र विचित्र चहूँ दिसि परदा फटिक-पगार॥
सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम-खंभ सुजोर।
चारु पाटि पटी पुरटकी झरकत मरकत भौंर॥
मरकत भँवर डाँड़ी कनक मनि-जटित दुति जगमगि रही।
पटुली मनहु बिधि निपुनता निज प्रगट करि राखी सही॥
बहुरंग लसत बितान मुकुतादाम-सहित मनोहरा।
नव-सुमन-माल-सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा॥ ३॥

घर-घरमें हिंडोले, पृथ्वीपर काँचका सुन्दर और सुढाल गच तथा चारों दिशाओंमें स्फटिककी भीतोंपर चित्र-विचित्र परदे लटक रहे हैं। मूँगेके सीधे, विशाल और सुदृढ़ खंभ सुशोभित हैं तथा सोनेसे मढ़ी हुई सुन्दर पटलियोंपर मरकतमणिके भौंरे और [illegible]

प्रकार खूब झूला मचता है, झूलनेवाली नारियोंकी घुँघराली अलकें बिखर जाती हैं जिससे उन रमणियोंकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती है। हवा लगनेसे उनके वस्त्र उड़ने लगते हैं और आभूषण खिसक जाते हैं। इसपर अन्यान्य सखियाँ उन्हें हँस-हँसकर झुलाने लगती हैं॥ ४॥

फिरि फिरि झूलहिं भामिनी अपनी अपनी बार।
बिबुध-बिमान थकित भए देखत चरित अपार॥
बरषि सुमन हरषहिं उर, बरनहिं हरिगुन-गाथ।
पुनि पुनि प्रभुहि प्रसंसहीं 'जय जय जानकिनाथ'॥
जय जानकीपति, बिसद कीरति सकल-लोक-मलापहा।
सुरबधू देहिं असीस, चिरजिव राम, सुख-संपति महा॥
पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं।
रघुबीरके गुनगन नवल नित दास तुलसी गावहीं॥५॥

सब सखियाँ अपनी-अपनी बारीसे पुनः-पुनः झूलती हैं। इस अपार चरितको देवताओंके विमान थकित होकर देख रहे हैं। वे पुष्प बरसाकर, हृदयमें हर्षित हो श्रीहरिकी गुणगाथाका बखान करते हैं और 'जानकीनाथकी जय हो, जय हो' ऐसा कहते हुए बारंबार प्रभुकी प्रशंसा करते हैं। 'जानकीनाथकी जय हो' उनकी विशद कीर्ति सम्पूर्ण कलिकल्मषोंको नष्ट करनेवाली है। इस प्रकार देवाङ्गनाएँ भी 'भगवान् राम चिरजीवी हों और उनका सुख और वैभव बढ़ता रहे' ऐसा कहती हुई उन्हें आशीर्वाद देती हैं। वर्षाकालीन अयोध्याका वर्णन सुननेसे सब पापसमूह नष्ट हो जाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि रघुनाथजीके नित्य-नूतन गुणगणोंको दास सदा ही गाते रहते हैं॥ ५॥

## दीपमालिका

राग आसावरी

[ २० ]

साँझ समय रघुवीर-पुरीकी सोभा आजु बनी।
ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि भवधनी ॥ १ ॥
फटिक-भीत सिखरनपर राजति कंचन-दीप-अनी।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहसफनी ॥ २ ॥
प्रति मंदिर कलसनिपर आजहिं मनिगन दुति भनी।
मानहुँ प्रगटि बिपुल लोहितपुर पठइ दिये अवनी ॥ ३ ॥
घर घर मंगलचार एकरस हरषित रंक-धनी।
तुलसिदास कल कीरति गावहि, जो कलिमल समनी ॥ ४ ॥

## वसन्त-विहार

राग गौरी

[ २१ ]

अवध नगर अति सुंदर बर सरिताके तीर।
नीति-निपुन नर-तिय सबहिं, धरम-धुरंधर, धीर ॥ १ ॥
सकल रितुन्ह सुखदायक, तामहँ अधिक बसंत।
भूप-मौलि-मनि जहँ बस नृपति जानकीकंत ॥ २ ॥
बन उपबन नव किसलय, कुसुमित नाना रंग।
बोलत मधुर मुखर खग, पिकबर, गुंजत भृंग ॥ ३ ॥
समय बिचारि कृपानिधि, देखि द्वार अति भीर।
खेलहु मुदित नारि-नर, बिहँसि कहेउ रघुबीर ॥ ४ ॥
नगर-नारि-नर हरषित सब चले खेलन फागु।
देखि राम-छबि अतुलित उमगत उर अनुरागु ॥ ५ ॥
स्याम-तमाल-जलदतनु निरमल पीत दुकूल।
अरुन-कंज-दल-लोचन सदा दास अनुकूल ॥ ६ ॥
सिर किरीट, स्रुति कुंडल, तिलक मनोहर भाल।
कुंचित केस, कुटिल भ्रू, चितवनि भगत-कृपाल ॥ ७ ॥
कल कपोल, सुक नासिक, ललित अधर द्विज-जोति।
अरुन कंज महँ जनु जुग पाँति रुचिर गज-मोति ॥ ८ ॥
बर दर-ग्रीव, अमितबल बाहु सुपीन, बिसाल।
कंकन-हार मनोहर, उरसि लसति बनमाल ॥ ९ ॥
उर भृगु-चरन बिराजत, द्विज-प्रिय चरित पुनीत।
भगत हेतु नर-बिग्रह सुरबर गुन-गोतीत ॥ १० ॥
उदर त्रिरेख मनोहर, सुंदर नाभि गँभीर।
हाटक-घटित, जटित मनि कटितट रट मंजीर ॥ ११ ॥

तुलसिदास तेहि अवसर माँगी भगति अनूप।
मृदु मुसुकाइ दीन्हि तब कृपादृष्टि रघुभूप ॥२५॥

श्रेष्ठ नदी सरयूके तटपर बसा हुआ अयोध्या नगर बड़ा ही सुन्दर है। वहाँके सभी स्त्री-पुरुष नीति-निपुण, धर्मधुरन्धर और धैर्यशाली हैं ॥ १ ॥ यों तो यह नगर जहाँ नृपतिशिरोमणि जानकीनाथ भगवान् राम निवास करते हैं सभी ऋतुओंमें सुखदायक है, किन्तु वसन्त ऋतुमें उसकी शोभा अधिक बढ़ जाती है ॥ २ ॥ वहाँके वन और उपवनोंमें नवीन पत्ते और कई रंगके पुष्प खिले हुए हैं, चहचहाते हुए पक्षी और सुन्दर कोकिल सुमधुर बोली बोल रहे हैं तथा भौंरे गूँज रहे हैं ॥ ३ ॥ कृपानिधान भगवान् रामने अनुकूल समय समझकर और द्वारपर बहुत भीड़ तभी देखकर हँसते हुए कहा, 'सब स्त्री-पुरुष प्रसन्नतापूर्वक होती रहेंगे' ॥ ४ ॥ यह सुनकर नगरके सब नर-नारी प्रसन्न होकर फाग खेलने चले। उस समय महाराज रामकी अनुपम छवि देखकर उनके हृदयमें अपार प्रेम उमड़ने लगा ॥ ५ ॥ भगवान् रामका शरीर श्याम तमाल अथवा श्याम मेघके समान शोभायमान है। उसपर अति निर्मल पीताम्बर है। उनके नेत्र अरुण कमलदलके समान हैं और वे सदा ही अपने सेवकोंपर कृपादृष्टि रखते हैं ॥ ६ ॥ उनके [illegible] कानोंमें कुण्डल और [illegible] सुशोभित हैं। उनकी अलकावली कुञ्चित, भृकुटि बाँका और चितवन मनोहर हृदय करनेवाली है ॥ ७ ॥ उनके कपोल बड़े सुन्दर हैं। नासिका तोतेकी चोंचके समान है, तथा मनोहर ओठोंके बीचमें दाँतोंका ज्योति इस प्रकार जगमगा रहा है मानो अरुण कमलके बीचमें गजमुक्ताओंकी दो

झाँझ, डफ, ढोल और दुन्दुभी आदि बाजे बजाते हैं तथा सुन्दर और सरस सहनाइयोंपर समयानुकूल गाना गाते हैं ॥ १७ ॥ वीणा और बाँसुरीकी सुमधुर ध्वनि सुनकर किन्नर और गन्धर्वगण अपने बड़े गुणको भी, अभिमान छोड़कर मन-ही-मन अत्यन्त तुच्छ मानने लगते हैं ॥ १८ ॥ कोकिलभाषिणी कामिनियाँ अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़कर मनोहर गान कर रही हैं, मानो हिमालयके शिखरोंपर सुर-सुन्दरियाँ विराजमान हों ॥ १९ ॥ जहाँ-तहाँ अपने-अपने उज्ज्वल भवनोंसे स्त्रियोंके झुंड निकलते हैं मानो बहुत-सी अप्सराएँ मिलकर समुद्र-मन्थन कर रही हों ॥ २० ॥ वे सुन्दरता और आनन्दसहित बसन्ती साड़ी ओढ़े ऐसी जान पड़ती हैं मानो चन्द्रमाओंके समूह बिजलियोंके घरोंमें बसे हुए हों ॥ २१ ॥ वे सुचतुर सुन्दरी स्त्रियाँ अबीर घोलकर कुंकुमोंमें भरती हैं तथा ऋतुके स्वभावानुसार तरह-तरहकी पवित्र और सुन्दर गालियाँ देती हैं ॥२२॥ जो सुख योग, यज्ञ, जप और तीर्थ आदिसे परे है वही श्रीरामचन्द्रजी-की कृपासे अयोध्याकी गलियोंमें भरा हुआ है ॥ २३ ॥ इस प्रकार फाग खेलनेके अनन्तर भगवान्‌ने सरयू नदीके जलमें स्नान किया। तदनन्तर याचकोंको तरह-तरहके वस्त्र और आभूषण प्राप्त हुए ॥२४॥ उसी समय तुलसीदासने प्रभुकी अनुपम भक्ति माँगी, तब श्रीरघुनाथ-जीने मृदुल मुसकान करते हुए कृपादृष्टिपूर्वक वह दे दी ॥ २५ ॥

राग वसंत

[ २२ ]

खेलत बसंत राजाधिराज। देखत नभ कौतुक सुर-समाज ॥ १ ॥
सोहैं सखा-अनुज रघुनाथ साथ। छोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ

तन पर उनकी लज्जा बिल्कुल चली गयी है ॥ ८ ॥ स्त्री-पुरुष आपसमें गालियाँ देते हैं; उन्हें सुन-सुनकर श्रीरामचन्द्रजी भाइयोंके सहित हँसते हैं ॥ ९ ॥ 'सूर्यकुल-कुमुदकलाधर भगवान् रामकी जय हो, जय हो' ऐसा कहते हुए देवतालोग फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥ १० ॥ अयोध्याके निवासी ब्रह्मादिक भी प्रशंसा कर रहे हैं। तुलसीदास भी प्रभुकी पवित्र कीर्तिका गान करता है ॥ ११ ॥

## अयोध्याका आनन्द

राग केदारा

[ २३ ]

देखत अवधको आनंद।
हरषि बरषत सुमन दिन दिन देवतनिको बृंद ॥ १ ॥
नगर-रचना सिखनको बिधि तकत बहु बिधिबृंद।
निपट लागत अगन, ज्यों जलचरहि गमन सुछंद ॥ २ ॥
मुदित पुरलोगनि सराहत निरखि सुखमाकंद।
जिन्हके सुअलि-चख पियत राम-मुखारबिंद-मरंद ॥ ३ ॥
मध्य ब्योम बिलंबि चलत दिनेस-उडुगन-चंद।
रामपुरी बिलोकि तुलसी मिटत सब दुख-द्वंद ॥ ४ ॥

अयोध्याका आनन्द देखकर देवतालोग हृदयमें हर्षित हो नित्यप्रति फूलोंकी वर्षा करते हैं ॥ १ ॥ नगरकी रचना सीखनेके लिये ब्रह्माजी उसके तरह-तरहके भेद देखते हैं; परन्तु उन्हें यह इस प्रकार अत्यन्त दुर्गम जान पड़ती है जैसे जलचरको पृथ्वीपर स्वच्छन्द विचरना* ॥ २ ॥ जिनके नेत्ररूपी भौंरे सुखमाकन्द भगवान्

* क्योंकि ब्रह्माजी नायिक सृष्टिके अधिकारी हैं और यह दिव्य रचना है।

ये ॥ ३ ॥ भगवान्‌के राजसभाका वर्णन करके दीन तुलसीदास भी यही माँगता है कि मुझे अपनाकर अपने चरणोंका परम पवित्र और दृढ़ प्रेम दीजिये ॥ ४ ॥

## सीता-वनवास

[ २५ ]

संकट सुकृतको सोचत आनि जिय रघुराउ।
सहस द्वादस पंचसतमें कहुक है अब आउ ॥ १ ॥
भोग पुनि पितु-आयुको, सोउ किए बनै बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी नहि और अघ उपाउ ॥ २ ॥
पालिबे असिधार-ब्रत, प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ।
होइ हित केहि भाँति, नित सुबिचारु, नहि चित चाउ ॥ ३ ॥
निपट अंतरजामहु बिलसति मुख-मनोहरताउ।
परम धीर-धुरीन हृदय कि हरष-बिसमय काउ ? ॥ ४ ॥
अनुज-सेवक-सचिव हैं सब सुमति, साध सराउ।
जान कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ ॥ ५ ॥
रान जोगवत सीय-मनु, प्रिय-मनहि प्रानपियाउ।
परम पावन प्रेम-परमिति तनुजि तुलसी गाउ ॥ ६ ॥

एक समय श्रीरघुनाथजी अपने संकट उपस्थित होनेका मन-ही-मन इस प्रकार सोचने लगे—'अब मेरी कुल हजार पाँच सौ वर्षकी आयुमें कुछ ही और शेष है ॥ १ ॥ उनके पश्चात् पिताकी आयुका भोग है, और उसे भोगनेसे ही काम चलेगा; किन्तु उसे भोगनेके लिये [illegible] आगे बिना और कोई निर्दोष उपाय नहीं

राम-सीय-सनेह बरनत अगम सुकबि सकाहिं।
रामसीय-रहस्य तुलसी कहत राम-कृपाहिं ॥ ४ ॥

अन्तमें रामचन्द्रजीने बहुत सोच-विचारकर मन-ही-मन उन्हें त्याग देना निश्चित कर लिया। अब परम कृपालु रघुनाथजीके सभी क्षण लौकिक-वैदिक स्नेहका पालन करनेमें बीतने लगे ॥ १ ॥ 'सीताजी मुझे परम प्रिय हैं, उनके अलौकिक पातिव्रतको देखकर पार्वती और लक्ष्मीजी भी ईर्ष्या करती हैं, इस समय वे गर्भवती हैं तथा परम सुकुमारी नारीरत्न हैं' यह विचारकर प्रभु उन्हें त्यागनेमें सकुचाते हैं ॥ २ ॥ 'सीताजी मेरे ही सुखमें सुखी रहती हैं, इन्हें अपने सुखका स्वप्नमें भी ध्यान नहीं है' इस प्रकार अपनी गुणखानि गृहिणीके गुणोंको याद कर-करके वे सोचमें डूब जाते हैं ॥ ३ ॥ श्रीराम और सीताजीके अगम स्नेहका वर्णन करनेमें बड़े-बड़े कवि भी शङ्कित हो जाते हैं। तुलसीदास तो श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे ही राम और सीताके गूढ़ रहस्यका वर्णन करता है ॥ ४ ॥

[ २७ ]

चरचा चरनिसों चरची जानमनि रघुराइ।
दूत-मुख सुनि लोक-धुनि घर घरनि बूझी आइ ॥ १ ॥
प्रिया निज अभिलाष-रुचि कहि कहति सिय सकुचाइ।
तीय-तनयसमेत तापस पूजिहौं बन जाइ ॥ २ ॥
जानि करुनासिंधु भावी-बिबस सकल सहाइ।
धीर धरि रघुबीर भोरहि लिए लषन बोलाइ ॥ ३ ॥
'तात तुरतहि साजि स्यंदन सीय देहु चढ़ाइ।
बालमीकि मुनीस आस्रम आइयहु पहुँचाइ' ॥ ४ ॥

तब लक्ष्मणजीने सीताजीको लाकर मुनिवर वाल्मीकिको सौंप दिया, और सिर नवा उनका आशीर्वाद पा करकमल जोड़े हुए खड़े रहे ॥ १ ॥ लक्ष्मणजीको व्याकुल और ग्लानिसे गलते देख सर्वज्ञ वाल्मीकिजीने विधाताको वाम जानकर उनसे कुछ भी नहीं पूछा ॥ २ ॥ उन्होंने अपने मन-ही-मन अनुमानसे सारी बातें जानकर सीताजीका सहस्रों प्रकार सम्मान किया; किन्तु [ यह विचारकर कि ] राम तो सम्पूर्ण सद्गुणोंके धाम और सीमा हैं [ उन्होंने यह क्या किया ? ] उन्हें कुछ खेद भी हुआ ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, त्रिलोकीकी रानी सीताजी अपने दीनबन्धु और दयामय देवरको देखकर बड़ी व्याकुल हो गयीं और उदास होकर ये वचन कहने लगीं ॥ ४ ॥

[ २९ ]

तौलौं बलि, आपुही कीवी बिनय समुझि सुधारि।
जौलौं हौं सिखि लेउँ बन रिषि-रीति बसि दिन चारि ॥ १ ॥
तापसी कहि कहा पठवति नृपनिको मनुहारि।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि ॥ २ ॥
लषनलाल कृपाल ! निपटहि डारिबी न बिसारि।
पालबी सब तापसनि ज्यों राजधरम बिचारि ॥ ३ ॥
सुनत सीता-बचन मोचत सकल लोचन-बारि।
बालमीकि न सके तुलसी सो सनेह सँभारि ॥ ४ ॥

[ सीताजी बोलीं—] 'जबतक मैं चार दिन वनमें रहकर तपस्वियोंकी रीति न सीख लूँ तबतक तुम्हीं भलीभाँति समझ-बूझकर भगवान्‌की विनय करते रहना ॥ १ ॥ मैं तपस्विनी होकर भला

इधर तो उन्हें सीताजीके प्रेमका आकर्षण था और उधर भगवान् रामकी आज्ञाका विचार था। अन्तमें वे चुपचाप ही सीताजीके चरण छू उनसे आशीर्वाद और शिक्षा ग्रहणकर वहाँसे चल दिये ॥ ३ ॥ [ वे सोचने लगे —] 'मैंने अपने प्रेमनिधि पिताजीको भरपेट कठोर वचन कहे थे* उस पापके कारण ही आज यह उचित दुःख सहन करना पड़ा जो सहकर ही चुकेगा' ॥ ४ ॥

[ ३१ ]

गौने मौनही बारहि बार परि परि पाय।
जात जनु रथ चीर कर लछिमन मगन पछिताय ॥ १ ॥
असन बिनु बन, बरम बिनु रन, बच्यौ कठिन कुघाय।
दुसह साँसति सहनको हनुमान ज्यायो जाय ॥ २ ॥
हेतु हौं सियहरनको तब, अबहु भयो सहाय।
होत हठि मोहि दाहिनो दिन दैव दारुन दाय ॥ ३ ॥
तज्यो तनु संग्राम जेहि लगि गीध जसी जटाय।
ताहि हौं पहुँचाइ कानन चल्यौं अवध सुभाय ॥ ४ ॥
घोरहृदय कठोरकरतब सृज्यो हौं बिधि बायँ।
दास तुलसी जानि राख्यो कृपानिधि रघुराय ॥ ५ ॥

फिर बारबार चरणोंमें गिर [illegible] चुपचाप [illegible] वे पश्चात्तापमें ऐसे डूबे हुए थे मानो [illegible] ॥ १ ॥ [ वे मन-ही-मन सोचते थे — [illegible] मैं वनमें बिना भोजनके ही जीवित रहा, युद्धक्षेत्रमें कवच न रहनेपर भी कुछ न बिगड़ा; शक्ति लगते समय भी बच गया, उस समय इस दुःसह

* [illegible] कहे कछु बचन कठोरा। [illegible]
—[illegible]

[ वाल्मीकिजी कहते हैं—] 'पुत्रि ! तू मनमें यह समझकर कि मैं अपने पिताके घर आयी हुई हूँ किसी प्रकारका शोक न कर। कल्याणि ! तुझे कल ( शीघ्र ) ही आनन्द-मङ्गल प्राप्त होनेवाला है ॥ १ ॥ तेरे पिता और ससुर दोनों ही राजर्षि हैं, साक्षात् भगवान् पति हैं और तू भी सम्पूर्ण मङ्गलोंकी खानि है—ऐसे स्थलमें भी विपरीत गति देखी जाती है, इससे मालूम होता है विधाताका स्वभाव बड़ा ही टेढ़ा है' ॥ २ ॥ फिर वाल्मीकिजीने प्रीतिकी गति जानकर सीताजीको बुलाया और उन्हें अपनी कन्या मानकर यह शिक्षा दी—'हे सीते ! तुम आलसियोंको शुभ गति देनेवाली गङ्गाजीकी मन लगाकर सेवा करना ॥ ३ ॥ प्रातःकाल ही स्नान करके इच्छित फल देनेवाले वटवृक्षका पूजन करना। हे देवि ! इससे तुम्हें पुत्रोंकी प्राप्ति होगी, दिन-दिन चित्तमें उत्साह बढ़ेगा और अहितकी हानि होगी' ॥ ४ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, फिर वाल्मीकिजीने पाप और तापको दूर करनेवाली बहुत-सी सरस और पुरानी कथाएँ कहकर सीताजीको सान्त्वना दी। इससे उनकी भारी ग्लानि दूर हो गयी ॥ ५ ॥

३३

जबतें जानकी रही रुचिर आश्रम आइ।
गगन, जल, थल विमल तबतें, सकल मंगलदाइ ॥ १ ॥
निरस भूरुह सरस फूलत, फलत अति अधिकाइ।
कंद-मूल, अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ ॥ २ ॥
मलय मरुत, मराल-मधुकर-मोर-पिक-समुदाइ।
मुदित-मन मृग-विहग विहरत विषम बैर बिहाइ ॥ ३ ॥

तेहि निसा तहँ सत्रुसूदन रहे बिधिबस आइ।
माँगि मुनिसों बिदा गवने भोर सो सुख पाइ॥ ३॥
मातु-मौसी-बहिनिहूतें, सासुतें अधिकाइ।
करहिं तापस-तीय-तनया सीय-हित चित लाइ॥ ४॥
किए बिधि-ब्यवहार मुनिबर बिप्रबृंद बोलाइ।
कहत सब, रिषिकृपाको फल भयो आजु अघाइ॥ ५॥
सुरुष ऋषि, सुख सुतनिको, सिय-सुखद सकल सहाइ।
सूल राम-सनेहको तुलसी न जियतें जाइ॥ ६॥

जानकीजीने शुभ दिन, शुभ घड़ी, शुभ नक्षत्र और शुभ लग्नमें दो बालकोंको जन्म दिया। उस समय मुनि-पत्नियाँ गान करने लगीं॥ १॥ देवतालोग प्रसन्न होकर गहगहे बाजे बजाते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे तथा सम्पूर्ण लोक, वन और आश्रमोंमें आनन्द-मंगल छा गये॥ २॥ उसी रात्रिको दैवयोगसे वहाँ शत्रुघ्नजी आकर टिक गये। यह सुख पाकर वे प्रातःकाल ही मुनिसे विदा माँगकर चले गये॥ ३॥ मुनियोंकी स्त्रियाँ और कन्याएँ सीताजीकी माता, मौसी, सासु और बहिनोंसे भी बढ़कर बहुत मन लगाकर सेवा करती थीं॥ ४॥ मुनिवर वाल्मीकिजीने ब्राह्मणोंको बुलाकर सब प्रकारके विधि और व्यवहार किये। सब लोग यही कहते हैं कि आज ऋषिकृपाका पूरा-पूरा फल हुआ है॥ ५॥ तुलसीदासजी कहते हैं, सीताजीको ऋषिकी अनुकूलता और पुत्रसुख आदि तो सभी सुखदायक और सहायक हो रहे हैं, किन्तु उनके हृदयसे भगवान् रामके स्नेहका शूल नहीं निकलता॥ ६॥

रहत रवि अनुकूल दिन, ससि रजनि सजनि सुहाइ।
सीय सुनि सादर सराहति सखिन्ह भलो मनाइ ॥ ४ ॥
मोद बिपिन बिनोद चितवत लेत चितहि चोराइ।
राम बिनु सिय सुखद बन, तुलसी कहै किमि गाइ ॥ ५ ॥

जबसे जानकीजीने उस सुन्दर आश्रमने आकर निवास किया है तबसे आकाश, जल और पृथ्वी—सभी निर्मल और सब प्रकारके मंगल देनेवाले हो गये हैं ॥ १ ॥ नीरस वृक्षोंमें भी बहुत आलस्यता-से सरस फूल-फल लगने लगे हैं तथा अनेकों प्रकारके कन्द, जल और अंकुर अपने स्वादसे अमृतको लज्जित करते हैं ॥ २ ॥ मलयवायु, हंस, भ्रमर, मयूर और कोकिलोंके समूह तथा प्रसन्नचित्त वन और पक्षी आपसका विषम वैर त्याग कर विहार करते रहते हैं ॥ ३ ॥ दिनमें सूर्य अनुकूल रहता है और गोधूम चन्द्रमा स्त्रियोंके प्रिय जान पड़ता है, सखियोंसे ऐसी बातें सुनकर सीताजी प्रसन्न होकर आदरपूर्वक उनकी सराहना करती हैं ॥ ४ ॥ वनमें ऐसा आनन्द-मंगल है कि देखते ही चित्तको चुरा लेता है, परन्तु रामचन्द्रजीके बिना सीताजीको वन सुखदायक है—इसे तुलसीदास किस प्रकार गाकर कह सकता है ? ॥ ५ ॥

## लव-कुश जन्म

[ ३४ ]

सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत, लगन सुहाइ।
पूत जाये जानकी द्वै, मुनिबधू उठीं गाइ ॥ १ ॥
हरषि बरषत सुमन सुर गहगहे बधाए बजाइ।

तेहि निसा तहँ सत्रुसूदन रहे बिधिबस आइ।
माँगि मुनिसों बिदा गवने भोर सो सुख पाइ ॥ ३ ॥
मातु-मौसी-बहिनिहूतें, सासुतें अधिकाइ।
करहिं तापस-तीय-तन्या सीय-हित चित लाइ ॥ ४ ॥
किए बिधि-ब्यवहार मुनिबर बिप्रबृंद बोलाइ।
कहत सब, रिषिकृपाको फल भयो आजु अघाइ ॥ ५ ॥
सुरुष ऋषि, सुख सुतनिको, सिय-सुखद सकल सहाइ।
सूल राम-सनेहको तुलसी न जियतें जाइ ॥ ६ ॥

जानकीजीने शुभ दिन, शुभ घड़ी, शुभ नक्षत्र और शुभ लग्नमें दो बालकोंको जन्म दिया। उस समय मुनि-पत्नियाँ [illegible] करने लगीं ॥ १ ॥ देवतालोग प्रसन्न होकर गहगहे बाजे [illegible] फूलोंकी वर्षा करने लगे तथा सम्पूर्ण लोक-वन और [illegible] आनन्द-मंगल छा गये ॥ २ ॥ उसी रात्रिको दैवयोगसे [illegible] जी आकर टिक गये। यह सुख पाकर वे प्रातःकाल ही [illegible] विदा माँगकर चले गये ॥ ३ ॥ मुनियोंकी स्त्रियाँ और [illegible] सीताजीकी माता, मौसी, सासु और बहिनोंसे भी [illegible] बहुत मन लगाकर सेवा करती थीं ॥ ४ ॥ मुनिके [illegible] ब्राह्मणोंको बुलाकर सब प्रकारके विधि और [illegible] लोग यही कहते हैं कि आज ऋषिकृपाका [illegible] है ॥ ५ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, सीताजीकी [illegible] और पुत्रसुख आदि ये सभी सुखदायक और [illegible] किन्तु उनके हृदयसे भगवान् [illegible] निकलता ॥ ६ ॥

[ ३६ ]

बालक सीयके बिहरत मुदित-मन दोउ भाइ।
नाम लव-कुस राम-सिय अनुहरति सुंदरताइ ॥१॥
देत मुनि मुनि-सिसु खेलौना, ते लै धरत दुराइ।
खेल खेलत नृप-सिसुन्हके बालबृंद बोलाइ ॥२॥
भूप-भूषन-बसन-बाहन, राज-साज सजाइ।
बरम-चरम, कृपान-सर, धनु-तून लेत बनाइ ॥३॥
दुखी सिय पिय-बिरह तुलसी, सुखी सुत-सुख पाइ।
भाँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ ॥४॥

सीताजीके बालक दोनों भाई प्रसन्नचित्तसे वनमें खेलते फिरते हैं। उनके नाम लव और कुश हैं; वे सुन्दरतामें भगवान् राम और सीताजीके ही समान हैं ॥ १ ॥ वाल्मीकि मुनि जब उन्हें मुनिबालकोंवाले खिलौने देते हैं तो वे उन्हें लेकर छिपाकर रख देते हैं। वे बहुत-से बालकोंको बुलाकर राजकुमारोंके-से खेल खेलते हैं ॥ २ ॥ वे राजाओंके-से आभूषण, वस्त्र, वाहन और राजसामग्री सजाते हैं तथा कवच, ढाल, तलवार, बाण, धनुष और तरकस भी बना लेते हैं ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, सीताजी पतिके वियोगमें तो दुखी हैं किन्तु पुत्रसुख पाकर प्रसन्न भी हैं जिस प्रकार अग्निपर रक्खा हुआ दूध उफनने लगता है परन्तु जलके छींटे लगते ही फिर बैठ जाता है ॥ ४ ॥

[ ३७ ]

कैकेयी जौलौं जियति रही।
तौलौं बात मातुसों मुँह भरि भरत न भूलि कही ॥१॥

मानी राम अधिक जननीतें, जननिहु गँस न गही।
सीय-लषन रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही ॥२॥
लोक-बेद-मरजाद दोष-गुन-गति चित चख न चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम-सनेह सही ॥३॥

कैकेयी जबतक जीवित रही तबतक भरतजीने भूलकर भी अपनी मातासे मुँह खोलकर बात नहीं की ॥ १ ॥ किन्तु रामचन्द्रजीने उसे अपनी मातासे भी बढ़कर माना और माता कौसल्याने भी उससे किसी प्रकारका मनमुटाव नहीं रक्खा। रामचन्द्रजीका रुख देखकर सीता, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न—इन सबने भी उसका निर्वाह किया ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, भरतजीने तो रामप्रेमको ही सुन और समझकर उसीकी रक्षा की। उन्होंने लोक या वेदकी मर्यादा अथवा गुण दोषकी गतिकी ओर न तो कभी चित्त ही लगाया और न दृष्टिपात ही किया ॥ ३ ॥

## रामचरितका उल्लेख

राग रामकली

३८।

रघुनाथ तुम्हार चरित मनोहर गावहिं सकल अवधबासी।
अति उदार अवतार मनुज-बपु धर ब्रह्म अज अबिनासी ॥१॥
प्रथम ताड़का हति सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज हितकारी।
दीख दुखी अति सिला सापबस रघुपति बिप्रनारि तारी ॥२॥
सब भूपनको गरब हर्‌यो भंज्यो संभु-चाप भारी।
जनकसुता समेत आवत गृह परसुराम अति मदहारी ॥३॥
नीति-बचन तोज राज-काज सुर चित्रकूट मुनिबेष धर्‌यो।
पंक नयन कीन्हा सुरपतिसुत बधि बिराध रिषि-सोक हर्‌यो ॥४॥

चिबटी पावन राघव करि सूपनखा कुरूप कीन्हीं।
खर-दूषन संहारि कपटमृग-पीथराज कहँ गति दीन्हीं ॥५॥
हति कबंध, सुग्रीव सखा करि, बेधे ताल, बालि मार्‍यो।
बानर-रीछ सहाय, अनुज सँग सिंधु बाँधि जस बिस्तार्‍यो ॥६॥
सकुल पुत्र दल सहित दसानन मारि अखिल सुर-दुख टार्‍यो।
परमसाधु जिय जानि बिभीषन लंकापुरी तिलक सार्‍यो ॥७॥
सीता अरु लछिमन सँग लीन्हें औरहु जिते दास आए।
नगर निकट बिमान आए, सब नर-नारी देखन धाए ॥८॥
सिव-बिरंचि, सुक-नारदादि मुनि अस्तुति करत बिमल बानी।
चौदह भुवन चराचर हरषित, आए राम राजधानी ॥९॥
मिले भरत, जननी, गुर, परिजन, चाहत [illegible]।
दुसह-बियोग-जनित दारुन दुख रामचरन देखत बिसरे ॥१०॥
बेद-पुरान बिचारि लगन सुभ महाराज अभिषेक कियो।
तुलसिदास जिय जानि सुअवसर भगति-दान तब माँगि लियो ॥११॥

हे रघुनाथजी [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]